एमएपीएस-516

(MAPS-516)

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था: संवैधानिक संस्थाएँ

(Indian Political System: Constitutional Institutions)

राजनीति विज्ञान विभाग

(समाज विज्ञान विद्याशाखा)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

एमएपीएस-516

(MAPS-516)

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था: संवैधानिक संस्थाएँ

(Indian Political System: Constitutional Institutions)

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	**प्रो.मदन मोहन जोशी, निदेशक (कार्यवाहक) –समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी
प्रो.एम.एम सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल	**प्रो.दुर्गाकान्त चौधरी** राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश
प्रो. सतीश कुमार राजनीति विज्ञान विभाग, इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**डॉ. घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर लोक प्रशासन , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. लता जोशी , असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ. आरूशी,** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन **दिग्विजय सिंह पथनी,** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), राजनीति विज्ञान , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. भुवन तिवारी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, राजनीति विज्ञान, एम बी पी जी कालेज, हल्द्वानी	1, 6
डॉ. अवधेन्द्र प्रताप सिंह, संविदा शिक्षक, राजनीति विज्ञान, उ. प्र. रा. टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज	2,4
डॉ. नन्दिता कौशल, लोक प्रशासन विभाग , लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ	3
डॉ. सूर्यभान सिंह, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, राजनीति विज्ञान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज	5, 7, 9,10,11
दिग्विजय सिंह पथनी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी) राजनीति विज्ञान , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	8
डॉ. ज़ाकिर हुसैन, सेवानिवृत्त प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय रानीखेत	12 ,13, 14

आई.एस.बी.एन. ----------

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,प्रकाशन वर्ष -2025

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

संस्करण:2025, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

MAPS-516

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था: संवैधानिक संस्थाएँ		
इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1 संवैधानिक निकाय		
1.	निर्वाचन आयोग: संरचना, कार्य, भूमिका	1-16
2.	अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग	17-34
3.	भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक	35-50
4.	संघ/ राज्य लोक सेवा आयोग	51-63
खण्ड 2 भारत में चुनाव व्यवस्था		
5.	भारत में दलीय राजनीति	64-74
6.	दल-बदल की राजनीति	75-90
7.	मिश्रित सरकारें- गठन, कार्यचालन और संभावनाएँ	91-100
8.	चुनाव सुधार	101-112
खण्ड 3 राष्ट्रीय एकीकरण: बाधक तत्व		
9.	राष्ट्रीय एकीकरण- बाधक तत्व, एकीकरण के उपाय	113-121
10.	भारतीय राजनीति में जातिवाद	122-130
11.	भारत में धर्म-निरपेक्षता	131-138
12.	नक्सलवाद	139-158
खण्ड 4 भारतीय राजनीतिक समाजीकरण		
13.	भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण	159-177
14.	भारत की राजनीतिक संस्कृति	178-193

इकाई-1 निर्वाचन आयोग संरचना, कार्य, भूमिका

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारत में निर्वाचन आयोग
1.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य
1.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां
1.3.3 समयानुसार सख़्त होता चुनाव आयोग
1.4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति
1.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार
1.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल
1.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

निर्वाचन आयोग अपने उद्देष्यों को पूरा करने के लिये बदलते समाज, राजसत्ता तथा प्रौद्योगिकी के अनुसार तेजी से अपने आप को ढाल रहा है। भारतीय राजनीति जो अपनी सीमाओं से बाहर होते जा रही थी उस पर निर्वाचन आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नियंत्रण लगाने का सफल प्रयास किया है। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए निर्वाचन आयोग ने भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक व्यवस्था की उत्तरोत्तर मजबूती का साक्ष्य दिया है।

भारतीय चुनाव आयोग एक स्वायत्त एंव अर्ध न्यायिक संस्थान है। जिसका गठन भारत में स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से विभिन्न राज्यों भारत के प्रतिनिधिक संस्थानों में प्रतिनिधि चुनने की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित कराने के लिये किया गया। भारतीय चुनाव आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को की गयी। आयोग में वर्तमान में एक मुख्य चुनाव आयुक्त व दो चुनाव आयुक्त होते हैं। 1950 में जब निर्वाचन आयोग का गठन किया गया तब यह केवल एकल सदस्यीय निकाय था। 25 जनवरी 1950 से 15 अक्टूबर 1989 तक यह केवल एक सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता रहा। 16 अक्टूबर 1989 से 1 जनवरी 1990 तक यह आर.वी.एस.शास्त्री मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्त के रूप में एस.एस.धनोवा और वी.एस.सहगल सहित तीन सदस्यीय निकाय बन गया। इसके संरचना में एक बार फिर परिर्वतन हुआ 2 जनवरी 1990 से 30 सितम्बर 1993 तक यह फिर एकल सदस्यीय निकाय बना। निर्वाचन आयोग की संरचना को फिर परिर्वतित करते हुए 1 अक्टूबर 1993 से इसे पुनः तीन सदस्यीय निकाय बना दिया गया। वर्तमान में निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय के रूप में हमारेदे शमें कार्य कर रहा है।

1.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हम निर्वाचन आयोग के उन सभी पहलूओं का अध्ययन करेंगे जिनसे हमें चुनावी प्रक्रिया को समझने में सरलता होगी।
- इस इकाई के द्वारा हम ये भी समझेंगे कि निर्वाचन/चुनाव आयोग का गठन कब हुआ उसके क्या कार्य है?
- निर्वाचन आयोग कैसे कार्य करता हैं और इतने विशाल देश में चुनाव जैसे कार्यक्रमों कोसफल बनाने में कैसी कार्यप्रणाली का प्रयोग करता है। यह भी हम इस इकाई में जानेंगे।

1.3 भारत में निर्वाचन आयोग

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया के अलग-अलग स्तर हैं। लेकिन मुख्य तौर पर भारत के संविधान में पूरेदेशके लिये एक लोकसभा और पृथक-पृथक राज्यों के लिये एक विधानसभा का प्रावधान है। भारतीय संविधान के भाग-15 में अनुच्छेद 324 से अनुच्छेद 329 तक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 324 निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेषन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना बताता है। संविधान के अनुच्छेद 324 में ही निर्वाचन आयोग को चुनाव सम्पन्न कराने की जिम्मेदारी दी है। 1989 तक निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय संगठन था लेकिन 16 अक्टूबर 1989 को एक राष्ट्रपतीय अधिसूचना के द्वारा दो और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की गयी। और इस प्रकार निर्वाचन आयोग को पुनः तीन सदस्यीय संगठन बना दिया गया। लोकसभा की कुल 543 सीटों के लिये अलग-अलग राज्यों से प्रतिनिधि चुने जाते हैं। ठीक इसी प्रक्रिया से अलग-अलग राज्यों की विधानसभाओं के लिये अलग-अलग संख्या में विधायकों का चुनाव किया जाता है। नगरीय चुनाव निकाय का प्रबन्धन राज्य निर्वाचन आयोग करता है। जबकि लोकसभा व विधानसभा चुनाव भारत निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में होते हैं। जिसमें वयस्क मताधिकार प्राप्त मतदाता प्रत्यक्ष मतदान के माध्यम से सांसद व विधायकों का चुनाव करते हैं। लोक सभा व विधानसभा दोनों का ही कार्यकाल पॉच वर्ष का होता है। लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के लिये सबसे पहले निर्वाचन आयोग अधिसूचना जारी करता है। अधिसूचना जारी हो जाने के बाद सम्पूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया के तीन भाग होते हैं-

- नामांकन
- निर्वाचन
- मतगणना

निर्वाचन की अधिसूचना जारी हो जाने के बाद नामांकन पत्रों को दाखिल करने के लिये सात दिनों का समय मिलता है। इसके बाद एक दिन उसकी जॉच पड़ताल के लिये रखा जाता है। इसमें अन्यान्य कारणों से नामांकन पत्र रद्द भी किये जा सकते हैं। तत्पश्चात दो दिन नाम वापसी के लिये दिये जाते हैं। ताकि वो उम्मीदवार जिन्हें किन्ही कारणों से चुनाव नहीं लड़ना हैंवे आवश्यकविचार विनिमय के बाद अपने नामांकन पत्र वापस ले सकें। 1993 तथा 1996 के लोकसभा चुनावों में विशिष्ट कारणों से नाम वापसी का समय चार दिन रखा गया था। परन्तु सामान्यतः यह कार्य दो दिनों में ही पूरा किया जाता रहा है। कभी-कभी किसी क्षेत्र में पुनः मतदान की स्थिति पैदा होने पर उसके लिये अलग से दिन तय किया जाता है। जो नितान्त रूप से निर्वाचन आयोग का एकाधिकार है। मतदान के लिये तय किये गये केन्द्रों में मतदान का समय प्रातः सात बजे से लेकर सायं पॉच बजे तक रखा गया है। यहॉ एक बात ध्यान देने की यह हैंकि भारत में वोट देने की कोई कानूनी वाध्यता नहीं है। यह नागरिकों

का अधिकार हैं कर्तव्य नहीं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं राज्य सभा सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इन्हें जनता द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधि चुनते हैं। चुनाव के समय समस्त प्रशासनिक मशीनरी चुनाव आयोग के नियंत्रण में कार्य करती है। चुनाव की घोषणा होने के पश्चात आचार संहिता लागू हो जाती है। हर राजनीतिक दल, उसके कार्यकर्ता व उम्मीदवार को इसका पालन करना पड़ता है।

1.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य

हम ऊपर इस बात को जान चुकें हैं कि निर्वाचन आयोग व निर्वाचन आयुक्त सम्बन्धि व्यवस्था का वर्णन संविधान के पंद्रहवे भाग में किया गया है। भारतीय शासन व्यवस्था में हमारे संविधान ने निर्वाचन आयोग को विषेष महत्व दिया है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुंजरू के अनुसार- ''यदि चुनाव व्यवस्था दोषपूर्ण हैं या अकुशल हैंया ऐसे व्यक्तियों द्वारा संचालित हैंजिनकी निष्ठा सन्देहपूर्ण है, तो प्रजातंत्र के सूत्र में ही जहर घुल जायेगा, इसी कारण हमारेदेशमें निर्वाचन के विषय को संवैधानिक मान्यता दी गयी है।'' संविधान निर्माताओं ने निर्वाचन आयोग को संविधान का आधार अंग माना है।

- निर्वाचन आयोग के पास यह उत्तरदायित्व हैंकि वह निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन तथा अयोजन करवाये।
- निर्वाचन आयोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद, राज्य विधान सभा के चुनाव करवाता है।
- यह निर्वाचन नामावली तैयार करवाता है।
- राजनीतिक दलों का पंजीकरण करता है।
- राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय, राज्य स्तर के दलों के रूप में वर्गीकरण करता हैंतथा मान्यता प्रदान करता है।
- यह दलों, निर्दलियों को चुनाव के समय चुनाव चिन्ह देने का काम करता है।
- सांसद व विधायकों की अयोग्यता(दल-बदल को छोड़ कर) पर राष्ट्रपति व राज्यपाल को सलाह देने का काम करता है।
- गलत निर्वाचन उपायों का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को निर्वाचन के लिये अयोग्य घोषित करता है।

1.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां

भारत के संविधान का अनुच्छेद 324(1) निर्वाचन आयोग को निम्न शक्तियां प्रदान करता है-

1. सभी निर्वाचनों का पर्यवेक्षण, नियंत्रण व आयोजन अपने विवेकानुसार करना ।

2. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार अनुच्छेद 324(1) में निर्वाचन आयोग की शक्तियां कार्यपालिका द्वारा नियंत्रित नहीं हो सकती। उसकी शक्तियां केवल उन निर्वाचन सम्बन्धि संवैधानिक उपायों तथा संसद निर्मित विधि से नियंत्रित होती है।

3. निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन व नियंत्रण का आयोजन कराने की शक्ति मेंदेशमें मुक्त, भयविहीन व निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये निर्वाचन आयोग असीमित शक्ति रखता है। यद्यपि प्राकृतिक न्याय, विधि का शासन तथा उसके द्वारा शक्ति का सदुपयोग होना चाहिए।

4. निर्वाचन आयोग विधायका निर्मित विधि का उल्लघंन नहीं कर सकता और न ही ये स्वेच्छा पूर्ण कार्य कर सकता है। उसके निर्णय न्यायिक पुनरीक्षण के पात्र होते हैं।

5. निर्वाचन आयोग की शक्तियां निर्वाचन विधियों की पूरक हैंन कि उन पर प्रभावी तथा वैध प्रक्रिया से बनी विधि के विरूद्ध प्रयोग नहीं की जा सकती है।

6. निर्वाचन आयोग चुनाव का कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। चुनाव चिन्ह आवंटित करने तथा निष्पक्ष चुनाव कराने केनिर्देशदेने की शक्ति रखता है।

7. निर्वाचन आयोग की शक्तियों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा हैंकि- वह एक मात्र अधिकरण हैंजो चुनाव कार्यक्रम निर्धारित कर सकता हैंऔर चुनाव कराना केवल उसी का कार्य है।

8.जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अनुच्छेद 14 व 15 भी राष्ट्रपति व राज्यपाल को निर्वाचन अधिसूचना जारी करने का अधिकार निर्वाचन आयोग के सलाह के अनुरूप ही देता हैं।

1.3.3 समयानुसार सख़्त होता चुनाव आयोग

चुनाव के समय चुनाव आयोग ही उच्चतम प्रशासनिक संस्था के रूप में कार्य करता है। उस समय चुनाव आयोग का आदेश अंतिम व सर्वमान्य होता है। चुनाव आयोग की शक्ति क्या है? कानून की शक्ति किसे कहते हैं? और शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता हैंइसको सबसे पहले पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने पूरे देश व दुनिया के सामने प्रस्तुत किया । टी.एन.शेषन भारतीय

चुनाव आयोग के 10वें मुख्य चुनाव आयुक्त थे। उनका कार्यकाल 12 दिसम्बर 1990 से 11 दिसम्बर 1996 तक रहा। टी.एन.शेषन ने कानून की शक्ति का सबसे प्रभावषाली प्रयोग करके सारेदेशको चुनाव आयोग की शक्ति से परिचित करा दिया। इनके कार्यकाल से पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त आम आदमी की जानकारी में प्रायः अनभिग्य ही था। शेषन काल से ही आम आदमी को निर्वाचन/चुनाव आयोग व मुख्य निर्वाचन आयुक्त की भूमिका व उसकी शक्ति का पता चला। आज अपनी शक्ति व कार्यषैली के कारण ही चुनाव आयोग आम सुर्खियों में आ गया है। शेषन ने ही भारतीय राजनीति में जड़ जमाती जोड़-तोड़ की राजनीति, बेईमानी, अपराधी प्रवृति के उमीदवारों, धनबल, बाहुबल पर नकेल डालने का सफल प्रयास करके सारी दुनियॉ के सामने स्वच्छ छवि वाले अधिकारी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। उन्होने आने वाले चुनाव आयुक्तों के लिये नजीर पेष कर इमानदारी की परम्परा स्थापित कर दी। तब से अब तक राजनीतिक दल और उनके सदस्य जो भी मुख्य चुनाव आयुक्त बनता हैंउससे सहम कर रहते हैं।

पिछले आम चुनावों से निर्वाचन/चुनाव आयोग ने चुनावों को और निष्पक्ष व भयमुक्त कराने के लिये कठोर दिशा निर्देश जारी कर दिये। नियमों को कठोर बनाते हुए उनका पालन कड़ायी से करने के भी आदेश जारी किये गये। इसका एक उदाहरण- पिछले आम चुनावों में मध्यप्रदेष में देखने को मिला। मध्य प्रदेष के पर्यटन मंत्री तुकोजीराव पवार और एक पूर्व सांसद उमीदवार फूलचंद वर्मा को रिटर्निंग आफिसर से बतमीजी करने के आरोप में प्रकरण दर्ज कर जेल भेज दिया। इस घटना से सभी उम्मीदवार व कर्मचारी भयभीत हो गये। चुनाव आयोग के इस शक्ति प्रदर्शन से पूरीमशीनरीमें हड़कम्प मच गया। निर्वाचन आयोग ने जब अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो जिला अधिकारी, पुलिस अधिकारी व अन्य शासकीय कर्मचारी अपने काम करने में गंभीरता के साथ जुट गये। सभी अधिकारी कर्मचारी रात के 12-12 बजे तक काम में लगे रहे। अब चुनाव आयोग ने सभी कर्मचारियों व अधिकारियों की समय सीमा तय कर दी है। और उसी समय के भीतर उन्हें अपना कार्य पूरा करना होता है। सिर पर नोटिस, कारण बताओ पत्र, निलम्बन, बर्खास्तगी की तलवार हमेशा सब के ऊपर लटकी रहती हैंचाहे व अधिकारी हो या कर्मचारी। उम्मीदवार भी सोच समझ कर कदम रख रहें हैं। सभी उम्मीदवारों ने निर्वाचन आयोग के नियमों का सही से पालन करने के लिये दो-दो वकील व चार्टेड एकाउन्ट रखना आम बात हो गयी है। ताकि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार या उसका दल आयोग को सभी लेखा-जोखा समय पर दे सके। अब उम्मीदवार को दैनिक खर्च को व्यौरा भी आयोग को देना होता है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को सम्पत्ती का ब्यौरा आयोग के सामने स्पष्ट करना होता है। चुनाव आयोग के कठोर नियमों के चलते उम्मीदवार झण्डे-डन्डे, स्पीकर, बैनर, पोस्टरों पर सतर्कता बरत रहे हैं। अब उम्मीदवार इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि किससे मिलना हैंऔर किससे चुनाव के दौरान दूरी बना के रखनी हैं ताकि चुनाव आयोग

के संदेह के घेरे में न आ जायें। चुनाव आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर नई चुनाव शैली का शुभारंभ किया है। जिसने इस देश के लोकतंत्र को और मजबूती देने का काम किया है।

भारत में चुनाव आयोग ने एक और महान व उल्लेखनीय काम करके सुर्खिया बटोरी हैं। चुनाव आयोग ने पर्यावरण संरक्षण को ले कर भी अनूठा व अभिनव प्रयोग किया है। यहॉ एक बात ये ध्यान देने की हैंकि सन 2004 में आम चुनावों में आयोग ने ''पेपरलैस'' चुनाव का प्रयोग किया। जो सफल रहा। पेपरलैस चुनाव से तात्पर्य था कि चुनावों मे कागज का कम से कम प्रयोग करना। इस मुहीम को सफल बनाने के लिये आयोग ने लगभग प्रत्येक राज्य में प्रत्येक मतदान केन्द्र पर इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन(ई.वी.एम.) से मतदान करवाया। ई.वी.एम. से मतदान करवा कर चुनाव आयोग ने देश का करोड़ो टन कागज बचाया। कागज के बचाने का प्रर्याय हैंपेड़ो का संरक्षण। पेड़ो को संरक्षित करने का मतलब हैंपर्यावरण का संतुलन प्रदान करना। यह चुनाव आयोग की नई व अनुकरणीय पहल है। इसी क्रम में चुनाव आयोग ने एक और अनूठा प्रयोग किया वो था ''प्लास्टिक पर बैन''। अब चुनाव आयोग के निर्देषों के चलते कोई भी प्रत्याशी या पार्टी प्लाटिक के बिल्ले, बैनर, झण्डिया, पोस्टर, स्टीकर आदि नहीं बनवा सकता है। आयोग ने सभी जिलाधिकारियों को सख़्त आदेश दिये हैं और सार्वजनिक सूचना भी दी हैंकि जो भी प्रशासनया स्क्रीन प्रिटिंग वाले प्लास्टिक की सामग्री छापेंगे उन्हें तुरन्त काली सूची में डाल दिया जायेगा और उन पर कड़ी कार्यवाही की जायेगी। ये चुनाव आयोग का सीधे जड़ पर प्रहार है। यह सर्वविदित हैंकि प्लास्टिक पर्यावरण के लिये घातक हैं चुनाव आयोग का ये फैसला पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक जीवन के पक्ष में एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जायेगा।

1.4 मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति

भारत में मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 साल, जो पहले हो होता है। जबकि अन्य चुनाव आयुक्तों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष जो पहले हो होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त का सम्मान व वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीष के समान होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त को संसद द्वारा महाभियोग चला कर पदच्युत किया जा सकता है। मुख्य चुनाव आयुक्त राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है। वह राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र देकर पद मुक्त हो सकता है। उसके सेवाकाल में उसके वेतन व उन्मुक्तियों को कम नहीं किया जा सकता है।

1.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार

मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार निम्न हैं-

1.वह संविधानों के प्रावधानों व संघीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के अनुसार संसद, राज्य व्यवस्थापिकाओं व स्थानीय स्वषासनों की मतदाता सूची तैयार व संशोधित करने का कार्य करता है।

2.संविधान के प्रावधानों तथा संसद व राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानूनों के अनुसार राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति संसद व राज्य विधान मण्डलों के चुनाव सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण,निर्देशन व नियंत्रण करता है।

3.वह राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जिसका सम्बन्ध हो, किसी सदन के सदस्य की अयोग्यता के बारे में परामर्ष देता है।

4.चुनाव सम्बन्धी अनियमितता के बारे में उठे सन्देहों व विवादों की जॉच के लिये चुनाव अधिकारी नियुक्त करने का दायित्व उसी का है।

5.अपने दायित्वों का भलि-भॉति निर्वाह करने के लिये वह राष्ट्रपति को क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने का सुझाव दे सकता है।

6.वह राष्ट्रपति या राज्यपाल से निर्वाचन कार्य सम्पन्न कराने के लिये उचित मात्रा में कर्मचारी मॉग सकता है।

7.वह निर्वाचन के समय चुनाव चिन्ह सम्बन्धी विवादों को निपटाता है।

8.वह मीडिया के सभी माध्यमों के द्वारा चुनाव की सभी गतिविधियों व निर्देषों को जनता तक पहुॅचाता है।

9.वह चुनाव क्षेत्र परीसीमन आयोग की लिपिकीय त्रुटियों को उनकी पूर्व अनुमति से ठीक कर सकता है।

10.वह चुनाव आलेखों व चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में जनमत को शान्त करने के लिये संकटग्रस्त क्षेत्रों की यात्रा कर सकता है। वह जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग कर सकता है।

11.वह किसी भी व्यक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा आरोपित अयोग्यता से मुक्ति दे सकता है।

12.वह विशेष परिस्थितियों में पुनः निर्वाचन का आदेश दे सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। उसके कार्य व क्षेत्राधिकार उसे और भी अधिक महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बनाते हैं।

लेकिन हम जानते हैं कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। हर अधिकारी अपने काम के लिये जवाबदेह हैं जिससे निरंकुषता का खतरा नहीं रहता है। 1978 के 44वें संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को चुनाव आयुक्त से ये पूछने का अधिकार दिया गया कि क्या किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू रहते हुए चुनाव कराना सम्भव है? इस परामर्शीय मत के प्रावधान के कारण राष्ट्रपति व मुख्य निर्वाचन अधिकारी को राजनीति के अखाड़े में खीचा जा सकता है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुजरू व सिब्बनलाल सक्सेना ने भी प्रधानमंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति को राजनीतिक रूप में प्रभावित होने की आशंका व्यक्त की थी। लेकिन यहॉ ध्यान देने वाली बात ये हैं कि आज तक प्रधानमंत्री के परामर्ष से जो भी नियुक्तियॉ राष्ट्रपति ने की वे सभी पदाधिकारी सत्य निष्ठा व उच्च न्यायिक इमानदारी के धारक रहे हैं।

1.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल

जैसा कि हम जानते हैं भारत विशाल बहुसंस्कृति, बहुभाषी, बहुरंग-रूपी देश है।ऐसे विशालकायदेशमें शान्ति पूर्ण चुनाव कराना एक बड़ी सफलता है। जिसे चुनाव आयोग बड़े संयम के साथ निभाता आ रहा है। लेकिन फिर भी कभी-कभी उसकी निष्पक्षता को लेकर सवाल खड़े होते रहे हैं। चुनाव आयोग पर अक्सर ये आरोप लगता रहा हैंकि वो सत्तारूढ़ दल का पक्ष लेता है। चुनाव आयोग पर पक्षपात करने का आरोप लगता रहा है। ये भी कहा जाता रहा हैंकि चुनाव आयोग सत्ताधारी दल से प्रभावित रहता हैं जिससे निष्पक्ष चुनाव नहीं हो पाते हैं। 1971 के बाद से चुनाव आयोग पर इस प्रकार के आरोपों की वृद्धि होते रही है। टी.एन.शेषन पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त जो अपनी इमानदारी व सत्यनिष्ठा के कारण दूसरों के लिये प्रेरणाश्रोत माने जाते हैं उनके विरूद्ध भी ये आरोप लगाया गया। जनता दल व अन्य दलों ने उनके विरूद्ध महाभियोग लाने का प्रयास भी किया। भले ही इसकी निष्पक्षता पर संदेह किया जाता रहा हो लेकिन पिछले चुनावों को देखते हुए ये कहा जा सकता हैंकि चुनाव आयोग की भूमिका अब तक पूर्णतया निष्पक्ष रही है। भारत में अब तक के चुनावों में हांलाकि चुनाव आयोग पर प्रत्यक्ष रूप से पक्षपात का कोई आरोप नहीं लगा हैंलेकिन चुनाव के दौरान उसमें कुछ दोष देखने में आये हैं। जिनको हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

1.अल्पमत की जीत-भारत में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिलते हैं वह विजयी होता है। लेकिन कई बार ऐसा देखने में आता हैंकि अन्य उम्मीदवारों को मिले मतों की कुल संख्या विजयी उम्मीदवार को मिल मतों की संख्या से अधिक होती है। कहने का तात्पर्य ये हैंकि विजयी उम्मीदवार को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं होता हैं लेकिन उसका मतप्रतिशत अधिक होने के कारण उसे विजयी घोषित किया जाता है।

2.चुनावों में धनखर्च की प्रवृति- चुनाव आयोग ने धन खर्च को लेकर पार्टी व प्रत्याशी दोनों के लिये कड़े नियम बना दिये हैं लेकिन फिर भी बड़े पैमाने पर धन का खर्च किया जा रहा है। चुनावों में खर्च किये जाने वाले धन की कोई सीमा नहीं है। चुनाव आयोग ने चुनाव सामग्री को लेकर तो नियम कड़े किये हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से आज भी चुनावों में बड़े स्तर पर धन लगाया जा रहा है। राजनीतिक दलों को अपने आय-व्यय का ब्यौरा फॉर्म 24-ए में भर कर देना पड़ता है। लेकिन अब भी सियासी दल इसको भरने में कतराते रहते हैं। कई राज्यों के बड़े नेताओं व मुख्यमंत्रियों ने इस फॉर्म को भरने में कोताही भरती है। वित्तीय वर्ष 2007-08 में भाजपा व कॉग्रेस के कई नेताओं ने भी 24-ए नहीं भरा। इससे ये बात साफ हो गयी कि राजनीतिक चन्दे के नाम पर सियासी दलों में कुछ तो संदेहात्मक है।

3.मतदाताओं की निष्क्रियता-चुनाव आयोग स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव करने के लिये भरसक प्रयास कर रहा हैंलेकिन यह चुनाव आयोग की कमी ही कही जायेगी वो आज भी जनता को चुनाव में मतदान करने के लिये प्ररित नहीं कर पाया है। दिन पर दिन मतदान प्रतिशत गिरता जा रहा है। अवैध रूप से मतदान का स्तर बड़ा है। फर्जी मतदान की घटनाएं अक्सर चर्चाओं में आती है। मतों व मतदाताओं की खरीद फरोस्त आम बात है। इन घटनाओं को लेकर चुनाव आयोग सवालों के घेरे में रहा है।

4.सत्ता प्राप्त दल द्वारा प्रशासन का गलत प्रयोग- चुनावों की घोषणा होते ही और अधिसूचना जारी होते ही सत्ता में बैठा हुआ दल सत्ता के दम पर प्रशासन का जम के फायदा उठाने की भरसक कोशिश करता है। प्रशासन का इच्छापूर्ति तक प्रयोग करता है। ऐसा भी देखा गया हैंकि सत्ता प्राप्त दल सरकारी तन्त्र को नवीन योजनाएं कार्यान्वित करने तथा चुनावों में अनियमितताएं करने के लिये दबाव बनाता है।

5.चुनाव में गुण्डा तत्वों का प्रयोग-किसी भी कीमत में चुनाव जीतने के लिये राजनीतिक लोग गुण्डा तत्वों का प्रयोग करने लगे हैं। बूथों पर कब्जा, जाली मत का प्रयोग करना, आतंक पैदा करना, मतपेटी को बदलने जैसी घटनाओं को अंजाम देने के लिये ऐसे तत्वों का प्रयोग राजनीतिक दल व उम्मीदवार खूब कर रहें हैं। इधर के कुछ वर्षा में एक और नई परम्परा का उदय हुआ है। अब राजनीति में अपराधियों का सीधे तौर पर प्रवेश हो गया है। अपराधी प्रवृति के आदमी में ये समझ पैदा हुई हैंकि जिन नेताओं के लिये वो काम कर रहें हैं अंततः सत्ता का लाभ नेता ही लेता है। इसलिये अब अपराधियों ने इस लाभ को स्वयं लेने के लिये राजनीति में प्रवेश किया है। राजनीतिक दल पहले चुनावों में अपराध को मुख्य मुद्दा बना कर चुनाव लड़ते थे अब अपराधियों के चुनाव में आ जाने के कारण व राजनीति का अपराधीकरण होने के कारण ये मुद्दा राजनीतिक दलों ने अपने ऐजेंण्डे से बाहर कर दिया है। चौदहवीं लोक सभा में 200 से ज्यादा ऐसे सदस्य थे जिन पर अपराधिक मामले दर्ज थे। यदि अनुमान लगाया जाये तोदेशभर में चुने गये प्रतिनिधियों में लगभग

20 प्रतिशत ऐसे प्रतिनिधि हैं जिनके खिलाफ अपराधी मामले दर्ज हैं। चुनाव आयोग राजनीति में बढ़ते अपराधियों की संख्या में नियंत्रण करने में लगभग असफल रहा है। चुनाव आयोग के लाख प्रयासों के बाद भी राजनीति में अपराधियों का प्रवेश होता रहा है। जिस कारण चुनावों की सत्यता संदिग्ध हुई है। राजनीति में सभ्य व भले लोंगों, गरीब लोगों ने प्रवेश करना लगभग खत्म कर दिया है।

1.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास

चुनावों में निरन्तर सुधार की आवश्यकता रही है। चुनाव को निष्पक्ष, स्वच्छ, भयमुक्त बनाने के लिये निर्वाचन आयोग व अनेकों समितियों ने गंभीर प्रयास किये हैं। जिनके परिणामस्वरूप आज भारत में चुनावों प्रक्रिया की स्थिति में सुधार हुआ है। चुनाव सुधारों को लेकर समय-समय पर निर्वाचन आयोग व गठित विभिन्न समितियों ने अपने सुझाव व निर्णय दिये। कुछ महत्वपूर्ण समितियों के सुझाव निम्नलिखित हैं।

1.तारकुण्डे समिति(1974)- सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी संस्था द्वारा चुनाव प्रक्रिया में सुधारों को लेकर वी.एम.तारकुण्डे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। जिसने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये-

- मतदान की आयु को 18 वर्ष करना। जिसे 61वें संविधान संशोधन द्वारा कर दिया गया।
- समिति ने दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि राजनीतिक दलों के आय-व्यय का हिसाब रखा जाये तथा चुनाव आयोग इसकी जॉच करे। यह सुझाव अब स्वीकार कर क्रियान्वित कर दिया गया है।
- प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार मतदान कार्ड छाप कर निःशुल्क उपलब्ध कराये तथा प्रचार सामग्री को भी डाक से निःशुल्क भेजने की व्यवस्था हो।
- जो भी राजनीतिक दलों को धन दान करे ऐसी संस्था, व्यक्ति को आयकर से छूट मिलने का प्रावधान हो।
- ऐसी स्थिति के आने पर जब लोकसभा या विधानसभा भंग हो जाये, सरकार कामचलाऊ तरीके से काम करती रहे जब तक की चुन कर सरकार नहीं बन जाती। कामचलाऊ सरकार अधिसूचना जारी होने के बाद व सरकार बनने तक कोई महत्वपूर्ण निर्णय न ले।

- ऐसे व्यक्ति जो मंत्री पद धारण किये हुए हैं चुनाव के समय वो सरकारी वाहनों का प्रयोग न करें और न ही सरकारी धन व तंत्र का प्रयोग करें।
- लोक सभा व विधान सभा के चुनावों में नामांकन शुल्क 2000 रूपया व 1000 रूपया किया जाये।

2.श्यामलाल शकधर व दिनेश गोस्वामी समिति- तत्कालीन चुनाव आयुक्त श्यामलाल षकधर ने 1981 में पहली बार मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिष की। इसे हाथों हाथ स्वीकार कर मतदाताओं को परिचय पत्र देने पर जोर दिया जाने लगा। ये महत्वपूर्ण सुझाव था। शकधर के इस सुझाव के कारण ही आज प्रत्येक मतदाता का परिचय पत्र होता है। इस सुझाव ने जाली मतदान में बड़ी सीमा तक अंकुष लगा दिया। इसके बाद दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया जिसने अपनी सिफारिषें देते हुए कहा कि

ऐसे मतदान क्रेन्द्र जिनके बूथों पर कब्जा किया गया हो पुनः मतदान कराया जाये। - भारत बहुभाषीय, बहुजातीय देश हैं इसलिये प्रत्येक समुदाय को चुनाव लड़ने का मौका दिया जाना चाहिए। जिससे ऐसा तबका जो मुख्यधारा में नहीं आ पा रहा हैंउस समाज का व्यक्ति होने से उस समाज में राजनीतिक चेतना का विकास होगा और वह मुख्य धारा से जुड़ेगा। इसके लिये सीटों के आरक्षण हेतु चक्राकार पद्धति अपनायी जाये।

चुनाव से सम्बन्धित याचिकाओं को शीघ्र निस्तारित किया जाये।

ऐसा प्रयास किया जाये कि मतदान इलेक्ट्रोनिक मशीन से हो।

जो स्थान किन्ही कारणोंवश रिक्त हो गया हो या रह गया हो उसे स्थान पर छः महीने की अन्दर चुनाव करा लिये जायें। साथ ही मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिस दिनेश् गोस्वामी समिति द्वारा भी की गयी।

3. के.सन्थानम समिति व टी.एन.शेषन की सिफारिशें - के. सन्थानम की अध्यक्षता में गठित समिति ने चुनाव को लेकर महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्याशी के लिये न्यूनतम शैक्षिक अर्हता निर्धारित की जानी चाहिए। राजनीतिक दलों का पंजीकरण व संविधान को लेकर स्पष्ट नियम बनाये जायें। निर्वाचन अधिकारियों को निर्वाचन आयोग के अधीन किया जाये तथा दोशी निर्वाचन अधिकारियों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाये तथा इसका अधिकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हो। निर्वाचन नामावलियों को हमेशाअद्यतन रखा जाये तथा समय-समय पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाये। चुनाव सुधारों को लेकर तत्कालीन मुख्य चुनाव

आयुक्त टी.एन.शेषन ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होने कहा कि- लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के उम्मीदवारों के लिये नामांकन शुल्क क्रमषः रूपया 5000 तथा 2500 किया जाये। साथ ही उन्होने ये भी सुझाव दिया कि लोक सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 प्रस्तावकों व 10 समर्थकों का होना आवश्यकहो तथा राज्य विधान सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 समर्थकों का होना आवश्यक अनिर्वाय हो। इसके साथ ही एक उम्मीदवार एक ही स्थान चुनाव लड़े। एक उम्मीदवार के दो स्थानों से चुनाव लड़ने मे प्रतिबन्ध हो। चुनाव प्रचार केवल 14 दिन तक ही किया जाये। मतदाताओं को पहचान पत्र जारी किये जाये। बूथों पर कब्जा व मतपेटी छीनने व अनाधिकार मतदान करने वालों को संज्ञेय अपराधों की श्रेणी में रखा जाये। आचार संहिता का पालन न करने वाले प्रत्याषियों को 5 वर्ष के लिये अयोग्य घोषित किया जाये।

4.इन्द्रजीत समिति-1998 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ सांसद इन्द्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपने सुझाव (अगस्त 2000) में चुनाव सुधारों को लेकर कहा कि राजनीतिक दलों को चुनाव में व्यय करने हेतु धनराशि सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानी चाहिए। चुनाव खर्चों के लिये एक सार्वजनिक कोष स्थापित किया जाये। जिसमें सरकार प्रतिवर्ष 600 करोड़ रूपये की राषि का योगदान करे। इतनी ही राषि का योगदान राज्यों से भी होना चाहिए।

5. पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त कुरैशी के सुझाव- 2010 से 2012 तक मुख्य निर्वाचन आयुक्त रहे शाहबुद्दीन याकूब कुरैशी ने सुझाव देते हुए कहा था कि आदर्श आचार संहिता लागू होने के साथ ही जनमत सर्वेक्षण पर भी पाबंदी लगायी जानी चाहिए। कुरैशी ने कहा कि जिस तरह से चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के पंजीकरण का अधिकार है उसी तरह से फर्जी दलों को अमान्य करने का भी अधिकार चुनाव आयोग को होना चाहिए। उनका कहना था की उस समय भारत में लगभग 1200 दल थे। उनके अनुसार इसमें से 150 सक्रिय राजनीति में थे। जबकि शेष फर्जी थे। धनबल व पेड न्यूज पर लगाम लगायी जाने की भी बात कुरैशी ने की। उन्होंने सुझाव देते हुए कहा कि अपराधिक रिर्काड वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोका जाये। कुरैशी ने ये भी सुझाव दिये कि चुनाव में सरकारी धन का प्रयोग नहीं होना चाहिए। आयोग के पूर्व अध्यक्ष का मानना था कि यदि ऐसा किया जाता है तो राजनीतिक दलों को अधिक पैसा मिलेगा। जिससे धन का दुरूपयोग बढ़ेगा। उन्होने सुझाव दिया कि उम्मीदवारों की अयोग्यता की अवधि को तीन से बढ़ा कर पॉच साल कर दिया जाये। साथ ही उन्होंने सुझावों में ये भी कहा कि चुनाव आयोग मतदाताओं को पर्ची बॉटेगा जिसमें चुनाव चिन्ह होंगे। ऐसा करने के पीछे प्रमुख कारण ये है कि चुनाव से 48 घन्टे पहले जो राजनीतिक दल पर्चीयॉ बॉटते वक्त मतदाताओं को उपहार व धन देने का प्रयास करते हैं उन पर नियंत्रण किया जा सकेगा।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. भारतीय संविधान के किस भाग में निर्वाचन से संबंधित प्रावधान किए गए हैं?

A.भाग–12 B. भाग–14

C. भाग–15 D. भाग–17

प्रश्न 2. संविधान के किस अनुच्छेद में निर्वाचन आयोग को चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई है?

A. अनुच्छेद 322 B. अनुच्छेद 324

C. अनुच्छेद 326 D. अनुच्छेद 329

प्रश्न 3. भारत निर्वाचन आयोग को तीन सदस्यीय संस्था पुनः कब बनाया गया?

A. 1950 B. 1978

C. 1989 D. 1996

प्रश्न 4. लोकसभा और विधानसभा चुनावों का नियंत्रण किसके अधीन होता है?

A. राज्य निर्वाचन आयोग B. संसद

C. भारत निर्वाचन आयोग D. गृह मंत्रालय

1.7 सारांश

आज भारत में चुनाव एक चुनौती के रूप में देखे जाते हैं। आजादी से आज तक चुनाव की प्रणालियों में परिर्वतन आया है। पहले चुनाव लोकतंत्र के सबसे बड़े पर्व की तरह देखे जाते थे। मेले की तरह चुनावों में उत्साह देखा जाता था। हर मतदाता चुनावों में बड़-चढ़ कर भागेदारी करता था। लेकिन आज चुनाव व मतदाता दोनों में परिर्वतन आया है। चुनावों में प्रवेश करते अपराधी तत्वों के कारण चुनाव आयोग भी सख़्त हुआ है। मतदान का प्रतिशत गिरा है। इन्ही सब चर्चाओं को लेकर ये अध्याय हमने पढ़ा। इस इकाई से हमने ये जानने व समझने का प्रयास किया कि चुनाव आयोग क्या हैंवो कैसे काम करता है। उसकी कार्य प्रणाली क्या है। चुनाव आयोग का सबसे बड़ा मुखिया उसका अध्यक्ष होता हैंजिसे मुख्य निर्वाचन आयुक्त कहा जाता है। भारत में चुनावों की चुनौतियों को देखते हुए मुख्य निर्वाचन आयुक्त का भी दायित्व बढ़ा है। इस इकाई में हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कैसे चुना जाता हैंउसके क्या कार्य व शक्तियॉ होती हैं इस पर विस्तृत चर्चा की। भारत एक विशाल देश हैं जहॉ कई भाषा व संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं। जिसके चलते चुनावों को सफलता तक ले जाना कठिन काम होता है। इसके लिये चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किये जाते रहे हैं। जिसके लिये कई समितियों व विद्वानों ने अपने सुझाव दिये हैं जिससे चुनाव

प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किया जाता रहा है। इस पर भी इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गयी। संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि निर्वाचन आयोग को जानने के लिये यह इकाई लाभप्रद होगी।

1.8 शब्दावली

1. निर्वाचन आयोग – भारत का एक संवैधानिक निकाय जो लोकसभा, विधानसभा, राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों का पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियंत्रण करता है।

2. **वयस्क मताधिकार** – वह सिद्धान्त जिसके अनुसार 18 वर्ष या उससे अधिक आयु का प्रत्येक नागरिक बिना किसी भेदभाव के मतदान करने का अधिकार रखता है।

3. **आदर्श आचार संहिता** – चुनाव घोषणा के साथ लागू होने वाले नियमों का वह समूह जिसका पालन राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों और सरकार को निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने हेतु करना होता है।

4. **इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM)** – मतदान की एक आधुनिक प्रणाली जिसमें मतदाता इलेक्ट्रॉनिक मशीन के माध्यम से अपना वोट दर्ज करता है, जिससे कागज का उपयोग कम होता है और पारदर्शिता बढ़ती है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) - C, 2) - B, 3) - C, 4) C.

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका
2. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में निर्वाचन आयोग की भूमिका व कार्य प्रणाली को समझाएं?
2. .निर्वाचन आयोग शक्तिशाली हैं इस पर अपने विचार दीजिए?
3. आज निर्वाचन आयोग आम आदमी की हर समस्या के साथ खड़ा हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
4. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति व उसकी शक्तियों को समझाइये? बताएं कि उसे पदच्युत कैसे किया जा सकता है?
5. भारत में चुनाव एक चुनौती बनते जा रहे हैं जिस कारण चुनाव आयोग भी सख़्त होता जा रहा है। इस पर अपने विचार लिखिये?
6. भारत में चुनाव सुधारों को लेकर लेख लिखिये?

इकाई-2: अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग

ईकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.2 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग
2.2.1 अनुसूचित जाति आयोग का गठन
2.2.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व
2.2.3 आयोग के परामर्शी अधिकार
2.2.4 विशिष्ट शिकायतों की जांच एवं पद्धति
2.2.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका
2.2.6 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट
2.3 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग
2.3.1 अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन
2.3.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व
2.3.3 कानून तथा विधान
2.3.4 विशिष्ट शिकायतों की जांच एवं पद्धति
2.3.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका
2.3.6 आयोग के परामर्शी अधिकार
2.3.7 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान के भाग 16 'कुछ वर्गो के संबंध में विशेष उपबन्ध' के अन्तर्गत (अनुच्छेद 338 तथा 341 व 342 में) अनसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान के लिए खास प्रावधान किये गये हैं। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए संविधान में दिए गये सुरक्षणों की व्यवस्था करने तथा अन्य विभिन्न प्रकार के सुरक्षात्मक कानूनों के कार्यान्वयन के लिए संविधान में अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत एक विशेष आयोग व अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। संविधान में उल्लिखित इस अधिकारी को 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसे अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित कानूनों एवं सुरक्षात्मक उपायों का अन्वेषण करने तथा इसके कार्यान्वयन आदि से सम्बन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करने का कार्य सौपा गया। इसके साथ ही आयुक्त को सौपें गये सभी कार्यो को भलींभांति सम्पन्न करने हेतु देश के भिन्न-2 भागों में आयुक्त के 17 क्षेत्रीय कार्यालयों की भी व्यवस्था की गयी।

किन्तु, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से सम्बन्धित संवैधानिक, सुरक्षात्मक उपायों एवं अन्य प्रावधानों के कार्यान्वयन एवं उचित देख-रेख करने में यह पूरी तरह सक्षम नहीं सिद्ध हो रहा था। अतः इस एक सदस्यीय व्यवस्था को सर्वप्रथम बहुसदस्यीय करने की मांग की गयी। आम लोगों, जनप्रतिनिधियों एवं सामाजिक संगठनों की तेजी से बढ़ती हुई मांग को देखते हुए सरकार(गृह मंत्रालय) ने 1978 में पारित एक संकल्प द्वारा एक प्रशासनिक निर्णय लेते हुए एक बहुसदस्यीय आयोग के गठन का निर्णय लिया। फलतः अगस्त, 1978 में श्री भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में चार सदस्यों सहित, अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों के लिए एक बहुसदस्यीय आयोग का गठन किया गया। पूर्वमें गठित आयुक्त के क्षेत्रीय कार्यालयों को इसके नियन्त्रण में लाया गया। यद्यपि इस आयोग के कार्य भी पूर्व में, नियुक्त किये गये आयुक्त के समान ही थे। हालांकि बाद में 1987 में कल्याण मन्त्रालय के द्वारा पारित एक संकल्प द्वारा आयोग के कार्यो में संशोधन किया गया और इसे राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के रुप में पुनर्नामित किया गया। इस आयोग का गठन मूलतः एक सलाहकारी निकाय के रुप में किया गया जिसका कार्य सरकार को नीतिगत मुद्दों एवं अन्य विकास से सम्बन्धित उपायों आदि पर सलाह देना था। बाद में इसे एक आयोग के रुप में संविधान (65वां संशोधन) विधेयक,1990 पारित होने के फलस्वरुप स्थापित किया गया। इस प्रकार कल्याण मन्त्रालय के संकल्प द्वारा 1987 में गठित आयोग के स्थान पर संविधान के अनुच्छेद 338 के अनुरूप पहले आयोग का गठन मार्च, 1992 को किया गया।

प्रथम, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का अध्यक्ष श्री राम धन को, उपाध्यक्ष श्री बंदी उराव को और सदस्य श्री वी सामाय्या, डॉ. सरोजनी महिषी, और चौधरी हरि सिंह, श्री

फलीन्द्रनाथ ब्रह्मा तथा श्री झीना भाई आर0 दरजी को सदस्यों के रुप में नामित किया गया। इसी प्रकार दूसरा आयोग 1995 में श्री एच. हनुमनतप्पा की अध्यक्षता में,और तीसरा आयोग दिसम्बर, 1998 में श्री दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में गठित किया गया। मार्च, 2002 में डा. विजय सोनकर शास्त्री की अध्यक्षता में चौथे आयोग का गठन किया गया।

संविधान में किये गये 89वें संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग को पृथक-पृथक क्रमशः पहला, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, दूसरा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के रुप में प्रतिस्थापित किया गया। इस पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के नियम सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय द्वारा दिनांक 20 फरवरी, 2004 की पूर्णतया अधिसूचित किये गये। इस प्रकार 2004 से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग अलग दो आयोग अस्तित्व में आए।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की गठन प्रक्रिया, उसके कार्य एवं दायित्व और आयोग के परामर्शी अधिकार तथा विशिष्ट शिकायतों की जांच के पद्धति साथ ही दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका आदि का विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। वर्तमान उदारीकरण के दौर में आयोग की निरन्तर बढ़ती हुई भूमिका साथ ही महत्ता की दृष्टि से उसकी गहरी समझ आवश्यक हो जाती है। इस इकाई को भलीभॉति पढ़ने एवं समझने के पश्चात आपः-

1.राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एवं जनजाति आयोग की आवश्यकता एवं महत्ता को समझ सकेंगे,

2.आयोग के कार्य एवं दायित्वों से भलीभांति अवगत हो सकेंगे,

3.आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका पर टिप्पणी कर सकेंगे,

4.आयोग द्वारा विशिष्ट शिकायतों की जांच तथा अपनायी गयी पद्धति को समझ सकेंगे

5.वर्तमान उदारीकरण के इस आर्थिक दौर में आयोग की निरन्तर बढ़ती हुई प्रासंगिकता से भी रूबरू हो सकेंगे।

2.3 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

इस इकाई के अन्तर्गत हम राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के गठन, कार्य एवं दायित्व और परामर्शी अधिकार, शिकायतों की जांच पद्धति तथा दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। आयोग द्वारा सुरक्षात्मक उपायों के कार्यान्वयन आदि से सम्बन्धित प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट का भी हम यहाँ विश्लेषण करेंगे।

2.3.1 अनुसूचित जाति आयोग का गठन

जैसा, कि हमने ऊपर चर्चा की, कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन संविधान के अनुच्छेद 338 के अधीन पृथक रुप से (89वें संविधान संशोधन) अधिनियम-2003 के द्वारा किया गया। इस आयोग को बकायदा 20 फरवरी, 2004 को अधिसूचित किया गया। इस प्रथम आयोग का गठन करते हुए उसका अध्यक्ष श्री सूरज भान, उपाध्यक्ष, फकीर भाई बघेला को तथा फूलचन्द वर्मा, देवेन्द्र जी और श्रीमती सुरेखा लाम्बुतरे को सदस्य नामित किया गया। इसकेपश्चातमई, 2007 को दूसरे अनुसूचित जाति आयोग का गठन किया गया। इसका अध्यक्ष डा. बूटा सिंह, उपाध्यक्ष प्रो. नरेन्द्र एम. काम्बले तथा श्रीमती सत्याबहन, श्री महेन्द्र बौद्ध को सदस्यों के रुप में नामित किया गया। राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा आयोग के इन अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्यों को नियुक्त करता है। इनकी सेवा की शर्ते एवं पदावधि भी राष्ट्रपति द्वारा अवधारित की जाती हैं। किन्तु आयोग के पास अनुसूचित जाति से सम्बन्धित प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होती है।

2.3.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

संविधान में अनुसूचित जाति आयोग के कार्यो एवं दायित्वों का स्पष्ट रुप से निर्धारण किया गया है, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत भलीभांति समझा जा सकता हैः-

1. अनुसूचित जातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायो से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण करना और उनपर निगरानी रखना तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूलयांकन का कार्य करना;

2. अनुसूचित जातियों को उनके अधिकारों और सुरक्षणों से वंचित करने की बावत निर्दिष्ट शिकायतों की जांच का कार्य करना;

3. अनुसूचित जातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया विषय में भाग लेना और सलाह देना तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास में प्रगति का मूल्यांकन करना,

4. उन रक्षोपायों के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझ, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कार्य करना,

5. ऐसे प्रतिवेदनों में उन रक्षापायों के बारे में जो उन रक्षापायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किये जाने चाहिए तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायो के बारे में सिफारिश का कार्य करना,

6. अनुसूचित जातियों के संरक्षण, कल्याण विकास तथा उन्नयन के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट का कार्य करना।

आयोग संविधान द्वारा निर्धारित उपर्युक्त महव्वपूर्ण कार्यो के सन्दर्भ में ही दायित्वों का विभाजन एवं कार्यो का आबंटन करता है जिसमें अध्यक्ष आयोग का प्रधान होता है और आयोग में उत्पन्न सभी विषयों पर निर्णय लेने की अवशिष्ट शक्ति उसी में निहित होती है। अध्यक्ष ही अन्य सदस्यों को कार्यो का आबंटन करता है। कार्यो के आबंटन से सम्बन्धित आदेश आयोग के सचिवालय द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुंचाया जाता है। आयोग के बैठकों की अध्यक्षता, अध्यक्ष करता है। इसके अनुमोदन केपश्चातही कोई निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष किसी भी विषय पर जिसे वह आवश्यक समझता हो स्वंय ही निर्णय ले सकता है। उपाध्यक्ष उन सभी कार्यो को करता है जो अध्यक्ष द्वारा उसको सौपा जाता है। इसी प्रकार आयोग के सदस्यों का सामूहिक दायित्व होता है। सदस्यों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अनुसूचित जातियों के कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं आदि के सम्बन्ध में सम्बन्धित राज्य सरकारों को परामर्श देने की भूमिका है। इसी प्रकार आयोग का सचिव जो आयोग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है वह अपने विभिन्न अधिकारियों की सहायता से आयोग के कार्यो के सुचारु संचालन में अध्यक्ष एवं सदस्यों को सहयोग प्रदान करता है। इस प्रकार से अनुसूचित जाति आयोग अपने कार्यो एवं दायित्वों का भलींभॉति निर्वहन करता है।

2.3.3 आयोग के परामर्शी अधिकार

आयोग के परामर्शी अधिकार एवं भूमिका का अवलोकन हम मुख्यतः दो स्तरों पर भलींभॉति कर सकते हैं-

1. राज्य सरकारों के साथ

2. योजना आयोग के साथ

आयोग, राज्य सरकारों के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र का प्रभारी सदस्य बैठकों या व्यक्तिगत मुलाकातों, पत्रों आदि के द्वारा राज्य सरकार से पारस्परिक संबंध रखता है। इस सम्बन्ध में

सूचना सम्बन्धित विभाग को पहले भेजी जानी चाहिए। राज्य कार्यालयों को भी सूचना भेजी जानी चाहिए आयोग इसके लिए विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाता है। इसमें आयोग का सचिवालय सम्बन्धित सदस्यों को सूचना आदि प्रदान कर सहयोग करता है। आयोग के सदस्य द्वारा निभायी जा रही इस परामर्शी भूमिका को भलींभॉति निर्वहन करने हेतु सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परिवहन, आवास एवं सुरक्षा आदि की सुविधाएं उन्हें उपलब्ध करायी जाती हैं।

योजना आयोग के साथ, अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अनुसूचित जाति आयोग उसके द्वारा गठित विभिन्न समितियों, कार्यकारी दलों में अपने प्रतिनिधित्व के माध्यम से करता है। समय-समय पर आयोग, योजना आयोग को इस प्रकार के कार्यदल बनाने का परामर्श भी देता रहता है। इसके साथ ही योजना आयोग द्वारा अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित योजनाओं, तथा विकास प्रक्रिया सम्बन्धी दस्तावेजों के मूल्यांकन सम्बन्धी कार्यवाही को आगे बढ़ाने का भी परामर्श देता है। आयोग, पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु भी योजना आयोग को विभिन्न प्रकार के परामर्श को समय-समय पर उपलब्ध कराता रहता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में स्थित अपने राज्य कार्यालयों के माध्यम से राज्य सरकारों से भी आयोग एक मजबूत कड़ी स्थापित करता है जिससे अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विकास योजनायें उसके कुशल मार्गदर्शन में चलती रहती हैं।

2.3.4 विशिष्ट शिकायतों की जांच एवं पद्धति

अनुसूचित जाति आयोग अपने अधिकार के अन्तर्गत आने वाले विषयों की जांच करने के लिए अनेक विधिंयां अपनाता है। जैसे आयोग सीधे ही जांच कर सकता है, या मुख्यालय में गठित जांचदल द्वारा, या राज्य कार्यालयों के माध्यम से या फिर राज्य एजेंसियों के माध्यम से अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त या कोई अन्य संस्था और इसके विधिक निकाय द्वारा अपना जांच कार्य सम्पन्न कराती है। आयोग अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विशिष्ट शिकायतों की जो उसके सुरक्षा, कल्याण और विकास से सम्बन्धित है उसकी जांच आयोग सीधे ही कर सकता है। इसके लिए कोई भी कार्यवाही शुरु करते समय सम्बन्धित पार्टियों एवं अनुसूचित जाति के सदस्यों केा सूचना का प्रेषण सुनिश्चित किया जाता है। आयोग राज्य के सभी सचिवों, पुलिस महानिदेशको की वर्ष में एक बार मीटिंग आयोजित कर अनुसूचित जाति के सुरक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर विचार कर कार्यान्वयन की पहल करता है। आयोग के पास विशिष्ट शिकायतों की जांच करते समय दीवानी अदालत की वे सभी शक्तियॉ होगी जो समाधान हेतु जरुरी हैं।

जॉच करते समय आयोग यदि किसी व्यक्ति की उपस्थिति आवश्यक समझता है तो वह अध्यक्ष के अनुमोदन से उसे 'समन' भेज सकता है। आयोग जॉच के अन्तर्गत किसी मामले में साक्ष्य होने के लिए संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड 8(ङ) के अन्तर्गत पत्र जारी कर सकता है और इस उद्देश्य

के लिए लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। जांच करने वाला सदस्य एक रिपोर्ट तैयार करेगा और वह रिपोर्ट नियम 34 के अन्तर्गत नियुक्त जांच अधिकारियों को भेजी जायेगी। अन्ततः यह रिपोर्ट तीन दिनों के भीतर अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी। इसके पश्चात अध्यक्ष के अनुमोदन से ही उस पर कार्यवाही प्रारम्भ की जायेगी। अध्यक्ष यह भी निर्णय ले सकता है कि प्रस्तुत रिपोर्ट का अन्वेषण व जांच आयोग के मुख्यालय में गठित एक अन्वेषण दल द्वारा किया गया। परन्तु यदि मामला गम्भीर और तुरन्त कार्रवाई का है तो उस पर तुरन्त निर्णय आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिया जायेगा।

विशिष्ट शिकायतों की एक स्पष्ट एवं सुव्यवस्थित जांच पद्धति होती है। अतः आयोग उसकी परिधि में ही अपनी कार्यवाही करता है। इसीलिए उन मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं करता है जो न्यायाधीन हैं। उन मामलों को भी आयोग नये सिरे से नहीं उठाता है जो न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय की स्थिति प्राप्त कर चुके हैं। आयोग स्थानान्तरण, तैनाती, आरक्षण तथा विभिन्न आदेशों आदि से सम्बन्धित प्रकरण को तब तक जांच हेतु स्वीकार नहीं करता है जब तक कि अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के उत्पीड़न का आधार न हों। अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किये गये अत्याचार के मामलों में आयोग तत्काल कार्यवाही करते हुए जिला प्रशासन द्वारा की गयी कार्यवाही का ब्योरा मांगता है तथा आरोपी के खिलाफ कार्रवाई न होने की स्थिति में प्राथमिकी दर्ज करने की सिफारिश करता है। यह भी अनुवीक्षण करता है कि अत्याचार की सूचना प्राप्त होने पर जिले के कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक द्वारा तुरन्त दौरा किया गया है? आयोग स्वयं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए घटना स्थल का दौरा भी करता है। इस प्रकार सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हुए आयोग पीड़ित जन को न्याय दिलाता है।

2.3.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 338क (5)के उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण या उपखण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी शिकायत की जांच करते समय आयोग को दीवानी अदालत की वे शक्तियां प्राप्त होगी जो उसे किसी मुकदमें को चलाने के लिए प्राप्त होती है। आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं-

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को 'समन' करना, आयोग के समक्ष उपस्थिति के लिए बाध्य करना, तथा शपथ पर उसका परीक्षण करना,

(ख) किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण के लिए आदेश देना,

(ग) शपथपत्र पर साक्ष्य ग्रहण करना,

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से लोक अभिलेख या उसकी प्रति को मांगना,

(ङ) गवाहों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना,

(च) कोई अन्य विषय जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा विनिर्धारित करे,

इस प्रकार अनुसूचित जाति आयोग उपर्युक्त आधारों पर कार्य करते हुए अनुसूचित जातियों को न्याय दिलाने हेतु एक दीवानी अदालत की भूमिका का निर्वहन करता है।

2.3.6 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

अनुसूचित जातियों के संरक्षण एवं उसके उपायों तथा अन्य विकासात्मक गतिविधियों के बारे में जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 338 खण्ड 5(घ) में व्यवस्था है, अनुसूचित जाति आयोग प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे राष्ट्रपति को प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट प्रस्तुत करें। आयोग अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित उन संरक्षणात्मक उपायों के राज्यों द्वारा कार्यान्वयन से सम्बन्धित सिफारिश भी अपने रिपोर्ट में राष्ट्रपति से करे।

अनुसूचित जाति आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह संवैधानिक सुरक्षणों के कार्यकरण तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण और कल्याण के लिए संघ और राज्यों द्वारा किये गये उपायों पर प्रतिवर्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस श्रृखला में देखा जाय तो 1992 से 2004 तक ही अवधि में आयोग द्वारा सात वार्षिक रिपोर्ट तथा चार विशेष रिपोर्ट और अनेक सिफारिशे प्रस्तुत की गयी। ऐसी ही अपेक्षा आयोग से आगे भी की जा रही है। राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड (6) के अनुसार सभी प्रतिवेदनों को तथा संघ से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी या प्रस्तावित कार्यवाही को, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है।

इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड 7 में व्यवस्था है कि, 'जहाँ कोई प्रतिवेदन या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित है जिसका किसी राज्य सरकार से सम्बन्ध है तो ऐसे प्रविवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जायेगी जो उसे राज्य से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही को राज्य के विधान मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

2.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

अब हम राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन, कार्य एवं दायित्व और कानून एवं विधान तथा जांच पद्धति, परामर्शी अधिकार तथा दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका आदि का यहाँ

विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। अनुसूचित जाति आयोग से एक तुलनात्मक अध्ययन करते हुए राष्ट्रपति को अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रविवेदनों एवं रिपोर्टो का भी यहाँ विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.4.1 अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन, संविधान के अनुच्छेद 338 के अधीन संविधान तथा अन्य कानूनों के अधीन जनजाति को दिये गये सभी सुरक्षणों का अनुवीक्षण करने के उद्देश्य से की गयी। यद्यपि 1987 में पारित एक संकल्प द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन एक साथ समन्वित रूप से किया गया, परन्तु जब सरकार इस वस्तुस्थिति से अवगत हुई कि भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनुसूचित जनजातियां, अनुसूचित जातियों से भिन्न है और उसकी समस्यायें भी भिन्न है, तब संविधान में किये गये (89वें संशोधन) अधिनियम 2003 द्वारा पृथक-पृथक रूप में पहला अनुसूचित जनजाति आयोग गठित हुआ। अन्ततः संविधान में संशोधन करते हुए एक नया अनुच्छेद 338 (क) जोड़ते हुए दिनांक 19 फरवरी, 2004 को एक नये आयोग की स्थापना की गयी। अनुसूचित जातियों के कल्याण और विकास को और तीव्र करने के लिए ऐसा अपरिहार्य हो चुका था। इससे अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और चहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

संविधान के (89 संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा पहला अनुसूचित जनजाति आयोग श्री कुवंर सिंह की अध्यक्षता में 20 फरवरी 2004 को गठित किया गया। इसके सदस्यों में श्री लामा लोबजंग, श्रीमती प्रेमाबाई मांडवी और बुदरु श्री निवासुलु थे। उपाध्यक्ष का पद श्री तापिर गाव को दिया गया था, जो बाद में उनके इस्तीफे कारण रिक्त हो गया।

2.4.2 आयोग के कार्य एवं दायित्व

संविधान में अनुसूचित जनजाति आयोग के कर्त्तव्य, कार्य तथा शक्तिंया (89वें संशोधन) अधिनियम 2003 द्वारा यथा संशोधित संविधान के अनुच्छेद 338(क) के खण्ड (5),(8) तथा (9) में निर्धारित किए गए हैं। आयोग के इन कार्यो एवं दायित्वों का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत भलीभॉति किए जा सकते हैं-

(क) अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायो से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण करना और उनपर निगरानी रखना तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूलयांकन का कार्य करना;

(ख) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और सुरक्षणों से वंचित करने की बावत निर्दिष्ट शिकायतों की जांच का कार्य करना;

(ग) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया विषय में भाग लेना और सलाह देना तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास में प्रगति का मूल्यांकन करना,

(घ) उन रक्षोपायों के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे , राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कार्य करना,

(ङ) ऐसे प्रतिवेदनों में उन रक्षापायों के बारे में जो उन रक्षापायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किये जाने चाहिए तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायो के बारे में सिफारिश का कार्य करना,

(च) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण विकास तथा उन्नयन के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट का कार्य करना।

आयोग संविधान द्वारा निर्धारित उपर्युक्त महव्वपूर्ण कार्यो के सन्दर्भ में ही दायित्वों का विभाजन एवं कार्यो का आबंटन करता है जिसमें अध्यक्ष आयोग का प्रधान होता है और आयोग में उत्पन्न सभी विषयों पर निर्णय लेने की अवशिष्ट शक्ति उसी में निहित होती है। अध्यक्ष ही अन्य सदस्यों को कार्यो का आबंटन करता है। कार्यो के आबंटन से सम्बन्धित आदेश आयोग के सचिवालय द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुंचाया जाता है। आयोग के बैठकों की अध्यक्षता, अध्यक्ष करता है। इसके अनुमोदन के पश्चात ही कोई निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष किसी भी विषय पर जिसे वह आवश्यक समझता हो स्वंय ही निर्णय ले सकता है। उपाध्यक्ष उन सभी कार्यो को करता है जो अध्यक्ष द्वारा उसको सौपा जाता है। इसी प्रकार आयोग के सदस्यों का सामूहिक दायित्व होता है। सदस्यों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं आदि के सम्बन्ध में सम्बन्धित राज्य सरकारों को परामर्श देने की भूमिका है। इसी प्रकार आयोग का सचिव जो आयोग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है वह अपने विभिन्न अधिकारियों की सहायता से आयोग के कार्यो के सुचारु संचालन में अध्यक्ष एवं सदस्यों को सहयोग प्रदान करता है। इस प्रकार से अनुसूचित जनजाति आयोग अपने कार्यो एवं दायित्वों का भलींभॉति निर्वहन करता है।

2.4.3 आयोग के कानून तथा विधान

अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण एवं विकास से सम्बन्धित अनेक कानून तथा विधान संघ और राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये हैं। इनमें से कुछ संवैधानिक प्रावधानों से उत्पन्न हुए हैं। जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

I.न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948,

II.बंधित श्रम पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम, 1976,

III.बाल श्रम (प्रतिषेध तथा विनियमन) अधिनियम, 1986

IV.भूमि के हस्तांतरण को प्रतिषिद्ध करने सम्बन्धी अधिनियम आदि।

उपर्युक्त कानून तथा विधान के माध्यम से अनुसूचित जनजाति आयोग,अनुसूचित जनजातियों की न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का कार्य करता है, बंधुआ मजदूर बनने से रोक लगाता है और बालश्रम को प्रतिबंधित करता है तथा आदिवासियों की भूमि को संरक्षित करने का कार्य करता है।

2.4.4 विशिष्ट शिकायतों की जांच एवं पद्धति

अनुसूचित जनजाति आयोग, अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों के उल्लघंन या उन पर होने वाले अत्याचारों का त्वरित जांच कर कार्यवाही सुनिश्चित करता है। आयोग द्वारा शिकायतों की जांच को कारगर तरीके से करने के लिए अनुसूचित जनजाति के लोगों को यह स्पष्ट संदेश देता है कि वे अपनी शिकायतें प्रमाणित दस्तावेजों के साथ तथा संगत उपबन्धों के साथ करते हैं तो उनकी तुरन्त सहायता की जायेगी। अतः आयोग के साथ शिकायतें प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिएः-

1. शिकायतकर्ता को अपनी पूरी पहचान, पूरा पता हस्ताक्षर सहित अवश्य अंकित करना चाहिए।

2. शिकायत, सीधे अध्यक्ष/उपाध्यक्ष/ सचिव/आयोग अथवा राज्य कार्यालयों के प्रधान को संबोधित होना चाहिए।

3. शिकायतें स्पष्ट रुप से लिखित अथवा टंकित होनी चाहिए, साथ ही प्रमाणित दस्तावेजों के साथ भेजी जानी चाहिए।

4. न्यायाधीन मामलों को आयोग को नहीं भेजना चाहिए तथा निर्णीत मामले पुनः नये सिरे से आयोग के समक्ष नहीं प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

अनुसूचित जनजाति आयोग अपने अधिकार के अन्तर्गत आने वाले विषयों की जांच करने के लिए अनेक विधिंयां अपनाता है। जैसे आयोग सीधे ही जांच कर सकता है, या मुख्यालय में गठित जांचदल द्वारा, या राज्य कार्यालयों के माध्यम से या फिर राज्य एजेंसियों के माध्यम से अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त या कोई अन्य संस्था और इसके विधिक निकाय द्वारा अपना जांच कार्य सम्पन्न कराती है। आयोग अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित विशिष्ट शिकायतों की जो उसके सुरक्षा, कल्याण और विकास से सम्बन्धित है उसकी जांच आयोग सीधे ही कर सकता है। इसके लिए कोई भी कार्यवाही शुरु करते समय सम्बन्धित पार्टियों एवं अनुसूचित जाति के सदस्यों केा सूचना का प्रेषण सुनिश्चित किया जाता है। आयोग राज्य के सभी सचिवों, पुलिस महानिदेशको की वर्ष में एक बार मीटिंग आयोजित कर अनुसूचित जनजाति के सुरक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर विचार कर कार्यान्वयन की पहल करता है। आयोग के पास विशिष्ट शिकायतों की जांच करते समय दीवानी अदालत की वे सभी शक्तियॉ होगी जो समाधान हेतु जरुरी हैं।

जॉच करते समय आयोग यदि किसी व्यक्ति की उपस्थिति आवश्यक समझता है तो वह अध्यक्ष के अनुमोदन से उसे 'समन' भेज सकता है। आयोग जॉच के अन्तर्गत किसी मामले में साक्ष्य होने के लिए संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड 8(ङ) के अन्तर्गत पत्र जारी कर सकता है और इस उद्देश्य के लिए लिखित आदेश द्वारा किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। जांच करने वाला सदस्य एक रिपोर्ट तैयार करेगा और वह रिपोर्ट नियम 34 के अन्तर्गत नियुक्त जांच अधिकारियों को भेजी जायेगी। अन्ततः यह रिपोर्ट तीन दिनों के भीतर अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी। इसके पश्चात अध्यक्ष के अनुमोदन से ही उस पर कार्यवाही प्रारम्भ की जायेगी। अध्यक्ष यह भी निर्णय ले सकता है कि प्रस्तुत रिपोर्ट का अन्वेषण व जांच आयोग के मुख्यालय में गठित एक अन्वेषण दल द्वारा किया गया। परन्तु यदि मामला गम्भीर और तुरन्त कार्रवाई का है तो उस पर तुरन्त निर्णय आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिया जायेगा।

विशिष्ट शिकायतों की एक स्पष्ट एवं सुव्यवस्थित जांच पद्धति होती है। अतः आयोग उसकी परिधि में ही अपनी कार्यवाही करता है। इसीलिए उन मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं करता है जो न्यायाधीन हैं। उन मामलों को भी आयोग नये सिरे से नहीं उठाता है जो न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय की स्थिति प्राप्त कर चुके हैं। आयोग स्थानान्तरण, तैनाती, आरक्षण तथा विभिन्न आदेशों आदि से सम्बन्धित प्रकरण को तब तक जांच हेतु स्वीकार नहीं करता है जब तक कि अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति के उत्पीड़न का आधार न हों। अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किये गये अत्याचार के मामलों में आयोग तत्काल कार्यवाही करते हुए जिला प्रशासन द्वारा की गयी कार्यवाही का ब्योरा मांगता है तथा आरोपी के खिलाफ कार्रवाई न होने की स्थिति में प्राथमिकी दर्ज करने की सिफारिश करता है। यह भी अनुवीक्षण करता है कि अत्याचार की सूचना प्राप्त होने पर

जिले के कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक द्वारा तुरन्त दौरा किया गया है? आयोग स्वयं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए घटना स्थल का दौरा भी करता है। इस प्रकार सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हुए आयोग पीड़ित जन को न्याय दिलाता है।

2.4.5 दीवानी अदालत के रुप में भूमिका

अनुसूचित जनजाति आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 338 क (5) के उपखण्ड (क) में है, कि किसी शिकायत की जांच करते समय आयोग को दीवानी अदालत की वे शक्तियां प्राप्त होगी जो उसे किसी मुकदमें को चलाने के लिए प्राप्त होती है। आयोग की दीवानी अदालत के रुप में भूमिका का अवलोकन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं-

1. भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को 'समन' करना, आयोग के समक्ष उपस्थिति के लिए बाध्य करना, तथा शपथ पर उसका परीक्षण करना,

2. किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण के लिए आदेश देना,

3. शपथपत्र पर साक्ष्य ग्रहण करना

4. किसी न्यायालय या कार्यालय से लोक अभिलेख या उसकी प्रति को मांगना,

5. गवाहों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना

6. कोई अन्य विषय जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा विनिर्धारित करे,

इस प्रकार अनुसूचित जनजाति आयोग, जनजातियों को उनकी शिकायतों के आधार पर न्याय दिलाने हेतु समन जारी कर सम्बन्धित व्यक्ति को दस्तावेज को उपलब्ध कराने का आदेश देता है, साक्ष्य ग्रहण करता है और लोक अभिलेख को मंगाता है। तथा कमीशन जारी कर दस्तावेजों का परीक्षण करता है। इस प्रकार आयोग दीवानी अदालत की भूमिका का भलीभॉति निर्वहन करता है।

2.4.6 आयोग के परामर्शी अधिकार

अनुसूचित जनजाति आयोग अपनी इस परामर्शी भूमिका का निर्वहन अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। वह राज्य सरकारों से पारस्परिक संबंध रखते हुए अपनी इस भूमिका का निर्वहन करता है। आयोग की इस भूमिका का अवलोकन दो स्तरों, पहला राज्य सरकारों के साथ तथा दूसरा योजना आयोग के साथ के स्तर पर समझा जा सकता है। आयोग, राज्य सरकारों

के साथ अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अपने सदस्यों, सचिवालय एवं राज्य कार्यालयों के माध्यम से करता है। किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र का प्रभारी सदस्य बैठकों या व्यक्तिगत मुलाकातों, पत्रों आदि के द्वारा राज्य सरकार से पारस्परिक संबंध रखता है। इस सम्बन्ध में सूचना सम्बन्धित विभाग को पहले भेजी जानी चाहिए। राज्य कार्यालयों को भी सूचना भेजी जानी चाहिए आयोग इसके लिए विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाता है। इसमें आयोग का सचिवालय सम्बन्धित सदस्यों को सूचना आदि प्रदान कर सहयोग करता है। आयोग के सदस्य द्वारा निभायी जा रही इस परामर्शी भूमिका को भलींभॉति निर्वहन करने हेतु सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परिवहन, आवास एवं सुरक्षा आदि की सुविधाएं उन्हें उपलब्ध करायी जाती हैं।

योजना आयोग के साथ, अपनी परामर्शी भूमिका का निर्वहन, अनुसूचित जाति आयोग उसके द्वारा गठित विभिन्न समितियों, कार्यकारी दलों में अपने प्रतिनिधित्व के माध्यम से करता है। समय-समय पर आयोग, योजना आयोग को इस प्रकार के कार्यदल बनाने का परामर्श भी देता रहता है। इसके साथ ही योजना आयोग द्वारा अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित योजनाओं, तथा विकास प्रक्रिया सम्बन्धी दस्तावेजों के मूल्यांकन सम्बन्धी कार्यवाही को आगे बढ़ाने का भी परामर्श देता है। आयोग, पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु भी योजना आयोग को विभिन्न प्रकार के परामर्श को समय-समय पर उपलब्ध कराता रहता है।

2.4.7 आयोग के प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, जनजातियों के संरक्षणात्मक उपायों एवं विकासात्मक गतिविधियों के बारे में संविधान के अनुच्छेद 338 खण्ड 5(घ) के अनुसार राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष या फिर ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग उचित समझता है,रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। आयोग अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित उन संरक्षणात्मक उपायों के राज्यों द्वारा कार्यान्वयन से सम्बन्धित सिफारिश भी अपने रिपोर्ट में राष्ट्रपति से करे।

अनुसूचित जनजाति आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह संवैधानिक सुरक्षणों के कार्यकरण तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण और कल्याण के लिए संघ और राज्यों द्वारा किये गये उपायों पर प्रतिवर्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस श्रृखला में देखा जाय तो 1992 से 2004 तक ही अवधि में आयोग द्वारा सात वार्षिक रिपोर्ट तथा चार विशेष रिपोर्ट और अनेक सिफारिशे प्रस्तुत की गयी। ऐसी ही अपेक्षा आयोग से आगे भी की जा रही है। राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड (6) के अनुसार सभी प्रतिवेदनों को तथा संघ से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी या प्रस्तावित कार्यवाही को, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है।

इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 338 के खण्ड 7 में व्यवस्था है कि, 'जहाँ कोई प्रतिवेदन या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित है जिसका किसी राज्य सरकार से सम्बन्ध है तो ऐसे प्रविवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जायेगी जो उसे राज्य से सम्बन्धित सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही को राज्य के विधान मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग से सम्बन्धित प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है।

A. अनुच्छेद, 338 B. अनुच्छेद, 339

C. अनुच्छेद, 340 D. अनुच्छेद, 341

2. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का कार्य निम्नलिखित में से कौन नहीं है?

A. रक्षोपायों का अन्वेषण B. विशिष्ट शिकायतों की जांच

C. दीवानी अदालत के रुप में कार्य D. दण्ड देने का कार्य

3. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का पृथक-पृथक गठन किस संविधान संशोधन द्वारा किया गया?

A. 88वें संशोधन B. 89वें संशोधन

C. 90वें संशोधन D. 91वें संशोधन

4. अनुसूचित जनजाति आयोग के पहले अध्यक्ष थे?

A. लोबजंग B. प्रेम बाई

C. श्री कुवर सिंह D. श्री निवासुलु

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप लोगों ने राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और अनुसूचित जनजाति आयोग की गठन प्रक्रिया, उसके कार्यो एवं दायित्वों और परामर्शी भूमिका, विधान तथा विशिष्ट

शिकायतों की जांच पद्धति का विस्तारपूर्वक एक विश्लेषणपरक अध्ययन किया। आयोग द्वारा संविधान के अनुच्छेद 338 क (5) के अन्तर्गत दिये गये दीवानी अदालत की भूमिका का जिसके अन्तर्गत वह समन जारी कर किसी भी व्यक्ति को प्रमाणित दस्तावेजों के साथ उपस्थित होने का आदेश जारी करता है, का भी विहंगमावलोकन किया गया। क्योंकि आयोग अत्याचार से सम्बन्धित शिकायतों के त्वरित निपटारे हेतु स्वंय सक्रिय भूमिका निभाता है। वह जिला प्रशासन द्वारा गम्भीर घटनाओं के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाही का भी अनुवीक्षण करता है।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग का एकरुपेण गठन (65वे संविधान संशोधन) अधिनियम 1990, के पारित होने के फलस्वरुप किया गया। यह आयोग संविधान के अनुच्छेद 338 के अनुरुप मार्च 1992 को अस्तित्व में आया। इस अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा 2003 तक सामूहिक रुप से संविधान द्वारा दिये गये कर्त्तव्यों का भलीभांति निर्वहन किया गया। पहले अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग का अध्यक्ष श्री राम धन को बनाया गया। इसी प्रकार 2002 अर्थात चौथे आयोग तक अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग का अध्यक्ष सामूहिक रुप से एक ही व्यक्ति को बनाया गया। किन्तु अनुसूचित जाति की समस्याओं एवं उसकी प्रकृति अनुसूचित जनजातियों से भिन्न होने तथा सामाजिक, आर्थिक एंव सांस्कृतिक विकास की अलग-अलग आवश्यकताओं को देखते हुए (89वें संविधान संशोधन) अधिनियम 2003 के द्वारा अलग-अलग दो आयोगों का गठन किया गया। इस अधिनियम द्वारा गठित आयोग अंन्ततः फरवरी,2004 में अस्तित्व में आया। जहॉ अनुसूचित जाति आयोग का पहला अध्यक्ष श्री सूरज भान को बनाया गया,वहीं पर पहले अनुसूचित जन जाति आयोग का अध्यक्ष अनुच्छेद (338क) के तहत श्री कुँवर सिंह को 20,फरवरी 2004 को बनाया गया। इस महत्वपूर्ण कदम से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के समग्र विकास का मार्ग तीव्रता से प्रशस्त हुआ।

इस प्रकार अन्ततः हम कह सकते हैं कि वर्तमान उदारीकरण,निजीकरण और भूमण्डलीकरण के इस आर्थिक दौर में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग पृथक-पृथक अपनी भूमिका का संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार निवर्हन करते हुए उनके सामाजिक,आर्थिक एवं शैक्षणिक उत्थान हेतु हर संभव कदम उठा रहा है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित सुरक्षात्मक उपायों एवं विकासात्मक गतिविधियों में और तीव्रता लाने हेतु आयोग प्रतिवर्ष तथा समय-समय पर अपना प्रतिवेदन एवं रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौपता रहता है। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन को संसद में रखवाकर कानून निर्माण तथा क्रिवान्वयन द्वारा उसका पालन सुनिश्चित कराता है। इतना ही नहीं विशिष्ट शिकायतों की जॉच से सम्बन्धित पद्धति को निर्धारित करने की शक्ति संविधान द्वारा स्वयं आयोग को प्रदान की गयी है, जिससे आयोग अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों

के हितों को पूरी तरह संरक्षित एवं संवर्धित करता है। आयोग अपनी स्थापना से लेकर अद्यतन एक सकारात्मक एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता आ रहा है।

2.6 शब्दावली

उपबन्ध - कानून/ प्रावधान।

कार्यान्वयन - लागू करना।

पारमर्शी भूमिका - सलाह देने का कार्य।

प्रतिवेदन - रिपोर्ट जो आयोग प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को सौपता है।

जांच पद्धति - जांच हेतु अपनाया गया तरीका या विधि।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.D 2.D 3.B 4.C

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.शर्मा, ब्रज किशोर (2007) ''भारत का संविधान'' पेरेटिस हाल आफ इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.'भारत का संविधान (2000) भारत सरकार विधि न्याय एवं कंपनी कार्य मंत्रालय।

3.त्रिवेदी, आर. एन. एवं राय, एम.पी. ''भारतीय सरकार एवं राजनीति'' कालेज बुक डिपो प्रकाशन जयपुर।

4.'हैण्ड बुक' (अनुसूचित जनजाति आयोग) 2009, हिन्दी

2.9 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री

23.9 निबन्धात्मक प्रश्न 1.पायली, एम.वी., ''इण्डियन कांस्टीट्यूशन''

2.राष्ट्रीय अनुसूचितजनजाति आयोग,पुस्तिका(हैण्डबुक)जून,2005।

3.फड़िया, बी.एल. ''भारतीय लोक प्रशासन''।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन और उसके कार्य एवं दायित्वों का विश्लेषण कीजिए?

2.राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की विशिष्ट शिकायतों की जांच पद्धति तथा दीवानी अदालत के रुप में उसकी भूमिका का परीक्षण कीजिए।

इकाई- 3 भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास
3.4 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति
3.5 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सेवा-शर्तें
3.6 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता
3.7 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां
3.8 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में अच्छे प्रकार से समझ चुके हैं। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर अवस्थित प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में देश में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की वित्तीय प्रशासन में भूमिका को निरूपित किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास किस प्रकार से हुआ, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है और कौन उसको शपथ दिलवाता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं, उसकी स्वतंत्रता संविधान द्वारा किस प्रकार से सुनिश्चित की गयी हैं, उसके कर्तव्य एवं शक्तियां क्या हैं और उसकी भूमिका की प्रभावशीलता कितनी रही हैं से संबंधित आपके दृष्टिकोण में व्यापकता आयेगी।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान पायेंगे कि भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव कब हुआ एवं उसका विकास किस प्रकार से हुआ; और
- बोध कर पायेंगे कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं तथा उसकी स्वतंत्रता किस प्रकार से सुनिश्चित की जाती है।

3.3 भारत में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास

लेखापरीक्षण का कार्य वास्तविकता में दुस्साध्य व अत्यधिक चुनौतीपूर्ण होता है इसलिये इसको करने के लिये लेखापरीक्षण के सुविस्तृत तंत्र का होना अनिवार्य हो जाता है। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर जो प्राधिकारी होता हैं वह भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नाम से बुलाया जाता है। भारत में उस प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहा जाता है।

भारत के अभिशासन में अनेक महत्वपूर्ण पद ब्रिटिश विरासत वाले हैं, जिनमें से एक पद नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद वर्ष 1858 में अस्तित्व में आया, जब भारत सरकार अधिनियम द्वारा देश में ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त कर दिया गया और शासकीय शक्तियों का अंतरण ब्रिटिश क्राउन को कर दिया गया। सर एडमन्ड ड्रमोन्ड देश के प्रथम लेखापरीक्षक के तौर पर वर्ष 1860 में नियुक्त किये गये। ब्रिटिश संसद द्वारा जब वर्ष 1919 में अगला भारत सरकार अधिनियम अधिनियमित किया गया तब उस अधिनियम ने लेखापरीक्षक के पद को संविधिक दर्जा दिया। इस अधिनियम ने देश में स्वतंत्र

लेखापरीक्षण का सूत्रपात किया और यह प्रदान किया कि अब से लेखापरीक्षक भारत सरकार से स्वतंत्र रहकर कार्य करेगा, उसकी नियुक्ति सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा की जायेगी और वह अपना पद अपने मेजेस्टी के प्रसादपर्यन्त तक धारण करेगा। वर्ष 1935 के अगले भारत सरकार अधिनियम द्वारा लेखापरीक्षक की स्थिति को अधिक सशक्त बनाया गया। इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा उसकी स्वतंत्र स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया। उसे प्रतिषेध किया गया कि वह अपना पद छोड़ने के पश्चात् क्राउन के अधीन कोई पद धारण नहीं करेगा। उसकी स्थिति फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य की गयी और यह प्रदान किया गया कि जिस तरीके से उक्त न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता हैं उसी तरीके से उसको भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ब्रिटिश शासन द्वारा वर्ष 1936 में भारत सरकार (लेखापरीक्षण एवं लेखा) आदेश जारी किया गया जिसमें उसके कर्तव्यों, शक्तियों एवं सेवा शर्त्तों को विहित किया गया। देश की स्वतंत्रता के उपरांत जब वर्ष 1950 में संविधान प्रभावी हुआ तो लेखापरीक्षक के पद को संवैधानिक दर्जा दिया गया, लेखापरीक्षक के पदनाम को भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के रूप में निर्दिष्ट किया गया और संविधान के भाग V (संघ) के अध्याय V (भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक) के अनुच्छेदों 148-151 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के संबंध में प्रावधान किये गये। ये अनुच्छेद इस प्रकार से हैं- अनुच्छेद 148- भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक; अनुच्छेद 149- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां; अनुच्छेद 150- संघ के और राज्यों के लेखाओं के प्रारूप; अनुच्छेद 151- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदन। देश में वर्ष 1860 से वर्ष 1948 तक निम्नलिखित 16 लेखापरीक्षक और उनके निम्नवत कार्यकाल रहे- एडमन्ड ड्रूममोन्डः 1860-1862, आर. पी. हैरिसनः 1862-1867 ई. एफ. हैरिसनः 1867-1879 (सबसे लंबा कार्यकाल), डब्लू. वॉटरफील्डः 1879-1881, जेम्स वेस्टलैण्डः 1881-1889, ई. गेः 1889-1891, एस. जेकॉबः 1891-1898, ए. एफ. कोक्सः 1898-1906, ओ. जे. बारॉः 1906-1910, आर. डब्लयू. गिलानः 1910-1912, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1912-1914, सर आर. ऐ. गैम्बलः 1914-1918, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1918-1929 , सर अर्नस्ट बर्डनः 1929-1940 , सर अलेक्जेंडर कैमरामन बन्डोचः 1940-1945, तथा सर बर्टीई स्टैगः 1945-1948

3.4 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की नियुक्ति

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत का सर्वोच्च लेखापरीक्षण प्राधिकारी होता है। राष्ट्रपति के अनुमोदन पर राष्ट्रपति सचिवालय द्वारा वर्ष 1979 में जारी किये गये भारतीय वरीयता क्रम में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक क्रम संख्या 9 'क' पर है। उसकी नियुक्ति के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त

करेगा। स्वतंत्रता के पश्चात् से वर्तमान तक अनुच्छेद- 148 (1) के प्रावधानुसार निम्नलिखित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षकों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया है जिनके नाम व कार्यकाल निम्नवत हैं- वी. नरहरी रावः 1948-1954, ए. के. चन्दाः 1954-1960, ए. के. रॉयः 1960-1966, एस. रंगनाथनः 1966-1972, ए. बक्शीः 1972-1978, ज्ञान प्रकाशः 1978-1984, टी. एन. चतुर्वेदीः 1984-1990, सी. जी. सोमैयाः 1990-1996, वी. के. शुंगलूः 1996-2002, वी. एन. कौलः 2002-2008, विनोद रायः 2008-2013, शशि कान्त शर्माः 2013-2017, राजीव महर्षिः 2017 से कार्यरत हैं।

नियुक्त किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा लिये जाने वाले शपथ या किये जाने वाले प्रतिज्ञान के संबंध में संविधान के अनुच्छेद- 148 (2) में प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपना पद ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा निमित्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

3.5 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्त्तें

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्तों के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (3) में किये गये है। इस अनुच्छेद के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें ऐसी होंगी जो संसद, विधि द्वारा, अवधारित करे। उक्त प्रावधान को प्रभाव में लाने हेतु संसद ने सर्वप्रथम वर्ष 1953 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (सेवा की शर्त्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। यह अधिनियम वर्ष 1971 तक प्रभावी बना रहा जब संसद द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम का अधिनियमन किया गया। 1971 के अधिनियम के अध्याय- II (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें) के खण्डों- 3 से 9 तक में उनके वेतन, पदावधि, अवकाश, पेंशन, पेंशन के संराशीकरण, साधारण भविष्य निधि में अंशदान देने के अधिकार, यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं आदि सेवा की शर्त्तें दी गयी हैं। ये सेवा की शर्त्तें, संक्षेप में, निम्नलिखित हैं-

1. खण्ड-3, वेतन- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर वेतन दिया जायेगा।
2. खण्ड- 4, पदावधि- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक उस तारीख जिस तारीख को वह पद ग्रहण करता है, से छह वर्ष की अवधि के लिये पद धारण करेगा। परन्तु जहां वह छह वर्ष की उक्त अवधि के अवसान के पूर्व 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है वहां वह ऐसा पद उस तारीख

को रिक्त कर देगा जिसको वह उक्त आयु प्राप्त कर लेता हैं। अग्रेतर वह, किसी भी समय, राष्ट्रपति को संबोधित स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।

3. खण्ड- 5, अवकाश- किसी व्यक्ति जिसे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक नियुक्त किया गया है, को ऐसे नियमों के अनुसार अवकाश की अनुमति दी जा सकती है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के किसी सदस्य पर तत्समय लागू है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के अवकाश को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने और उसके स्वीकृत किये गये अवकाश का प्रतिसंहरण करने या कम करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी।
4. खण्ड- 6, पेंशन- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद ग्रहण करता है, उक्त पद को छोड़ने पर पेंशन का पात्र होगा।
5. खण्ड- 7, पेंशन का संराशीकरण- इस प्रावधान का वर्ष 1987 में लोप कर दिया गया।
6. खण्ड- 8, भविष्य निधि में अंशदान देने का अधिकार- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद धारण कर रहा है, साधारण भविष्य निधि (केन्द्रीय सेवा) में अभिदान करने का पात्र होगा।
7. खण्ड- 9, सेवा की अन्य शर्त्तें- यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं से संबंधित सेवा की शर्त्तें जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पर तत्समय लागू हैं, जहां तक हो सके, किसी सेवारत या सेवानिवृत्त नियंत्रक-महालेखापरीक्षक पर लागू होंगी।

3.6 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की स्वतंत्रता

लेखापरीक्षण, जोकि वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, की प्रभावशीलता को बनाकर रखने हेतु नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्थिति का स्वतंत्र होना आवश्यक हो जाता है। उसकी स्वतंत्र स्थिति को संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा सुनिश्चित किया गया है-

1. अनुच्छेद- 148 (1)- भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।
2. अनुच्छेद- 148 (3)- नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के न तो वेतन में और न ही उसके अनुपस्थिति अवकाश, पेंशन या सेवानिवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिये अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

3. अनुच्छेद- 148 (4)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने पद पर न रह जाने के पश्चात् भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और पद का पात्र नहीं होगा।
4. अनुच्छेद- 148 (6)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

3.7 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्य व शक्तियों के संबंध में संविधान का अनुच्छेद- 149 जो प्रावधान करता है वह इस प्रकार से हैं- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और राज्यों के तथा किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिन्हें संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित किया जाये और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक संघ के और राज्यों के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः भारत डोमिनियन के और प्रान्तों के लेखाओं के संबंध में भारत के महालेखा परीक्षक को प्रदत्त थीं या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थीं। स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासकों के द्वारा भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश वर्ष 1936 में जारी किया गया था, जिसमें कि महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों और शक्तियों का उल्लेख किया गया था। यह आदेश वर्ष 1971 तक प्रभावी रहा, जब संसद ने नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। वर्ष 1971 के अधिनियम ने वर्ष 1936 के आदेश को निरस्त कर दिया। अधिनियम के अध्याय-III (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां) के खण्डों- 10-20 में उसके कर्तव्यों एवं शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। ये कर्तव्य एवं शक्तियां व्यापक तौर पर लोक निकायों के लेखाओं का संकलन करने और संकलित किये गये लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के साथ संबंधित हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां, संक्षिप्त में, अधिनियम के खण्डानुसार निम्नलिखित हैं-

- खण्ड- 10, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किया जाना;
- खण्ड-11, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किया जाना और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किया जाना;
- खण्ड-12, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिया जाना और सहायता प्रदान किया जाना;

- खण्ड-13, लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान;
- खण्ड-14, संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-15, अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य;
- खण्ड- 16, संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-17, भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-18, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियां;
- खण्ड-19, सरकारी कम्पनियों एवं निगमों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-19 'क', सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाना; तथा
- खण्ड- 20, कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम, 1971 में प्रदान किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों का सविस्तार खण्डवार विवरण निम्नवत हैं-

1. खण्ड-10- अधिनियम के खण्ड-10 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किये जाने संबंधी उसके कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन उन प्रारम्भिक और सहायक लेखाओं से करने के लिये उत्तरदायी होगा जो ऐसे लेखाओं को बनाकर रखने के लिये जिम्मेदार कोषागारों, कार्यालयों या विभागों के द्वारा उसके नियंत्रण के अधीन लेखापरीक्षण और लेखा कार्यालयों को दिये गये हैं। इसी के साथ वह उक्त निर्दिष्ट किये गये किन्हीं मामलों में से किसी के संबंध में लेखाओं को बनाकर रखने के लिये भी उत्तरदायी होगा।

खण्ड-10 का उपखण्ड (1), यह भी प्रावधान करता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को संघ के और राज्यों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किया जा सकता है। इसके संबंध में अधिनियम के अनुसार संघ के मामले में राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे संघ के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या संघ के

किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। अधिनियम अग्रेतर यह प्रावधान करता है कि राज्यों के मामले में किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे राज्य के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या राज्य की किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। खण्ड में आगे यह भी प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे किसी विशिष्ट वर्ग या स्वरूप के लेखाओं को बनाकर रखने की जिम्मेदारी से भी अवमुक्त कर सकता है।

2. खण्ड-11- अधिनियम के खण्ड- 11 का सरोकार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किये जाने और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। प्रावधानुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अपने द्वारा या सरकार के द्वारा या उस निमित्त जिम्मेदार किसी व्यक्ति के द्वारा संकलित किये गये लेखाओं में से, प्रत्येक वर्ष उन लेखाओं (जिनमें सम्मिलित हैं, उसके अपने द्वारा संकलित किये गये लेखाओं के मामले में, विनियोग लेखा) को तैयार करेगा जो संघ के या प्रत्येक राज्य के या विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु विशिष्ट शीर्षों के अंर्तगत वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दिखा रहे हैं, और ऐसे लेखाओं को राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को ऐसी तिथियों, जिन्हें वह, संबंधित सरकार की सहमति के साथ निर्धारित करे, को या उनके पूर्व प्रस्तुत करेगा। इस खण्ड में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किये जाने का प्रावधान भी हैं । संघ या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, तथा किसी के प्रयोजन हेतु किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है।

3. खण्ड-12- अधिनियम के खण्ड- 12 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिये जाने और सहायता प्रदान किये जाने के संबंध में उसके कर्तव्य का वर्णन किया गया है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, जहां तक उन लेखाओं के संबंध में जिनका संकलन करने या जिनको बनाकर रखने के लिये वह जिम्मेदार है, संघ सरकार को,

राज्य सरकारों को या विधान सभाओं वाले संघ-राज्य क्षेत्रों की सरकारों को, जैसा कि मामला हो, ऐसी सूचना देगा जिसकी आकांक्षा, समय-समय पर, उनको होगी, और उनके वार्षिक वित्तीय विवरणों को तैयार करने में उनको ऐसी सहायता प्रदान करेगा जिसकी वे यथोचित मांग करे।

4. खण्ड-13- अधिनियम के खण्ड-13 में लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान दिये गये हैं जो इस प्रकार से है। यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में से किये गये व्यय का लेखापरीक्षण करे और यह अभिनिश्चित करे कि क्या लेखाओं में वे धनराशियां जो संवितरित की गई दिखायी गयी है, वैध रूप से उपलब्ध थी और उस सेवा या प्रयोजन जिसके लिये उन्हें लागू या प्रभारित किया गया था के लिये वैध रूप से प्रयोज्य थी तथा क्या व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं से संबंधित संघ के एवं राज्यों के सभी संव्यवहारों का लेखापरीक्षण करे; और संघ के या किसी राज्य के किसी विभाग में रखे गये सभी सकल व्यापार, विनिर्माण, लाभ एवं हानि के लेखाओं तथा तुलन-पत्रों और अन्य सहायक लेखाओं का लेखापरीक्षण करे, और प्रत्येक मामले में उसके द्वारा लेखापरीक्षण किये गये व्यय, संव्यवहारों या लेखाओं के बारे में रिपोर्ट करे।

5. खण्ड-14- अधिनियम का खण्ड- 14 संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) में यह प्रावधान किया गया है कि जहां कोई निकाय या प्राधिकरण भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि से दिये गये अनुदानों या ऋणों के द्वारा वस्तुतः वित्त-पोषित है तो नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह उस निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण करे तथा उसकी रिर्पोट दे। इस खण्ड के उपखण्ड (2) में अग्रेतर यह प्रावधान किया है कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के पूर्व अनुमोदन के साथ, किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण कर सकता है, जहां किसी वित्तीय वर्ष में भारत की या किसी राज्य की या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि, जैसा कि मामला हो, से ऐसे निकाय या प्राधिकरण को दिया गया अनुदान या ऋण एक करोंड़ रूपये से कम नहीं है।

6. खण्ड-15- अधिनियम के खण्ड 15 में अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों का विवरण दिया गया है।

इसके प्रावधानुसार जहां किसी निकाय या प्राधिकरण, जो कोई विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय संगठन नहीं है, को भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि से किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये कोई अनुदान या ऋण दिया गया हैं तो नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक उन क्रियाविधियों की संवीक्षा करेगा जिनके द्वारा संस्वीकृत करने वाला प्राधिकारी उन शर्त्तों की पूर्ति के बारे में अपना समाधान करता है कि जिनके अधीन रहते हुये ऐसे अनुदान या ऋण दिये गये थे और इस प्रयोजन हेतु उस निकाय या प्राधिकरण की बहियों एवं लेखाओं तक, उचित पूर्व नोटिस देने के उपरांत, पहुंच का अधिकार होगा।

7. खण्ड-16- अधिनियम का खण्ड-16 संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के अनुसार यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह उन सभी प्राप्तियों का लेखापरीक्षण करे जो भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में संदेय है और अपना समाधान करे कि इस निमित्त नियम एवं क्रियाविधियां राजस्व के आंकलन, संग्रहण और उचित आवंटन पर प्रभावकारी नियंत्रण को प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं और उनका यथायोग्य अनुपालन किया जा रहा है तथा इस प्रयोजन के लिये लेखाओं का ऐसा परीक्षण करे जैसा कि वह उपयुक्त सोचे और उस पर रिपोर्ट दे।
8. खण्ड-17- अधिनियम का खण्ड-17 भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने के संबंध में प्रावधान करता है, जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पास संघ के या किसी राज्य के किसी कार्यालय या विभाग में रखे गये भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और रिर्पोट करने का प्राधिकार होगा।
9. खण्ड-18- अधिनियम के खण्ड- 18 में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। इस से संबंधित आवश्यक प्रावधान उपखण्ड (1) में किये गये हैं। उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पास अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने के संबंध में प्राधिकार होगा कि वह संघ के या किसी राज्य के अधीन किसी लेखा कार्यालय जो उसे लेखाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कोषागार और ऐसे कार्यालय जो प्रारम्भिक या सहायक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी हैं, का निरीक्षण करे; यह अपेक्षा करे कि किन्हीं लेखाओं, बहियों, लेखापत्रों और अन्य प्रलेखों जो उन संव्यवहारों जिन तक लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विस्तार है, के साथ संबंधित है या उनका आधार बनाते हैं या अन्यथा प्रासंगिक हैं को ऐसे स्थान पर भेजा जाये जो वह अपने निरीक्षण के लिये नियत करे; तथा वह कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति से ऐसे प्रश्न पूछे या ऐसी टिप्पणी करे जो वह आवश्यक समझे

और ऐसी सूचना मांगे जिसकी आकांक्षा उसे हो किसी ऐसे लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिये जिसको तैयार करना उसका कर्तव्य है।

खण्ड-18 के उपखण्ड (2) में कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति के लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विवरण दिया गया है। इस उपखण्ड के अनुसार किसी कार्यालय या विभाग, जिसके लेखाओं का निरीक्षण और लेखापरीक्षण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किया जाना है, का प्रभारी व्यक्ति ऐसे निरीक्षण के लिये सभी सुविधाएं जुटायेगा और सूचना उपलब्ध कराने संबंधी किये गये अनुरोधों का अनुपालन जहां तक संभव हो वहां तक उतने पूर्ण रूप में एवं यथोचित शीघ्रता के साथ करेगा।

10. खण्ड- 19- अधिनियम का खण्ड-19 सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। खण्ड के उपखण्ड (1) व (2) के अनुसार सरकारी कम्पनियों तथा संसद द्वारा या उसके द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अंतर्गत स्थापित निगमों के लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां उसके द्वारा क्रमशः कम्पनी अधिनियम, 1956 व विशिष्ट विधायनों के प्रावधानों के अनुसार सम्पादित और प्रयोग की जायेगी। खण्ड के उपखण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र का प्रशासक नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक से राज्य या संघ-राज्यक्षेत्र के विधानमण्डल, जैसा कि मामला हो, द्वारा बनायी गयी किसी विधि के द्वारा स्थापित की गयी किसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये अनुरोध कर सकता है और जहां पर ऐसा अनुरोध किया गया है, वहां पर नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ऐसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करेगा तथा उसकी बहियों व लेखाओं तक उसके पास पहुंच का अधिकार होगा।

खण्ड-19 क- अधिनियम के खण्ड-19क का सरोकार सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। इस अधिनियम के उपखण्डों (1), (2) व (3) के अनुसार किसी सरकारी कम्पनी या किसी निगम के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन संबंधित सरकार या सरकारों को प्रस्तुत किये जायेंगे। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार उनके द्वारा प्राप्त प्रत्येक प्रतिवेदन, उसके प्राप्त होने के उपरांत यथाशीघ्र, को क्रमशः संसद के प्रत्येक सदन और राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखवायेंगे।

11. खण्ड-20- अधिनियम का खण्ड- 20 कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने से संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार जहां पर किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि द्वारा या उसके अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को सौंपा नहीं गया है, वहां पर

यदि उस से राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के द्वारा ऐसा करने का अनुरोध किया गया है तो वह ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण ऐसे निबंधनों व शर्त्तों पर करेगा जो उसके और संबंधित सरकार के मध्य सहमत की गयी हो। खण्ड के उपखण्ड (2) में यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह प्रस्तावित कर सकता है कि उसे किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण, जिसके लेखाओं का लेखापरीक्षण करना उसे विधि द्वारा सौंपा नहीं गया है, के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जाये यदि उसका अभिमत है कि ऐसा लेखापरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के सरकार द्वारा उस निकाय या प्राधिकरण में पर्याप्त धनराशि निवेश की गयी है या उसे उधार दी गयी है और ऐसा अनुरोध किये जाने पर राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जा सकता है। खण्ड का उपखण्ड (3) यह प्रदान करता है कि उक्त किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को तभी प्राधिकृत किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह समाधान हो गया है कि लोक हित में ऐसा करना समीचीन होगा और ऐसे लेखापरीक्षण के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने के लिये संबंधित निकाय या प्राधिकरण को यथोचित अवसर दे दिया गया है।

3.8 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्र के लेखापरीक्षक के रूप में कार्य कर रहा है और उसके कार्य को दिशा-निर्देशित करने वाले मूलभूत मूल्य स्वतंत्रता, वस्तुनिष्ठता, सच्चरित्रता, विश्वसनीयता, व्यावसायिक उत्कृष्टता, पारदर्शिता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण हैं। वह शासन के तीनों स्तरों- संघ, राज्य व स्थानीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों; तथा संघ व राज्य सरकारों द्वारा वित्त-पोषित स्वायत्त निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और सम्बद्ध गतिवधियों को करने के लिये उत्तरदायी है। वह अपने कामों के माध्यम से लेखापरीक्षण संबंधी कार्यों में उत्कृष्टता के तत्व को सुनिश्चित करने और सुशासन की कार्यप्रणालियों का समर्थन करने हेतु प्रयास करता है। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कार्यालय की विस्तृत संगठनात्मक संरचना उसकी सहायता उसके नियत कार्यों को प्रवीणतापूर्वक कर सकने में करती है।

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की देश की लोकतांत्रिक रूपसंरचना में अपूर्व स्थिति है। वह लोक प्राधिकारियों के संबंध में वित्तीय मामलों में प्रहरी की भूमिका निभाता हैं जिसके द्वारा वह यह सुनिश्चित करता है कि वे संविधान, विधियों एवं नियमों के अधीन रहकर वित्तीय कार्यों को कर रहे है। एक ओर वह लोक प्राधिकारियों की वित्तीय गतिविधियों पर प्रत्यक्ष निरोध रखता है तो दूसरी ओर वह संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की सहायता उन पर वित्तीय नियंत्रण रखने में करता है। संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति, जोकि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों का परीक्षण उनके संसद/राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् करते हैं, का सुचारू कार्यकरण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सहायता से ही संभव हो पाता है। यथार्थता में उसे इन समितियों का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक कहा जाता है।

लोक प्राधिकारियों के वित्तीय मामलों के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किये जा रहे बाह्य लेखापरीक्षण, जिसमें व्यापक तौर पर वित्तीय लेखापरीक्षण, निष्पादन लेखापरीक्षण और अनुपालन लेखापरीक्षण सम्मिलित होते हैं, का विस्तार-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उसको निर्धारित करने का अनन्य प्राधिकार उसके पास है। लेखापरीक्षण से संबंधित सभी मामलों में निर्णय लेने का अंतिम प्राधिकार उसके पास होता है। सरकारें लेखापरीक्षण से संबंधित मामलों में उस से अनुरोध तो कर सकती है, परन्तु उसको कोई निर्देश जारी नहीं कर सकती है। लेखापरीक्षण का कार्य पूर्ण होने के उपरांत वह संघ और राज्यों के लेखाओं से संबंधित लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों को संविधान के अनुच्छेद-151 में किये गये प्रावधान के अनुसार क्रमशः राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को प्रस्तुत करता है और फिर इन प्रतिवेदनों को क्रमशः संसद व राज्य विधानमण्डलों के समक्ष रखा जाता है। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से विगत वर्षों के दौरान अनेक वित्तीय अनियमिततायें तथा घोटाले सामने आये है। यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक देश में वित्तीय प्रबंधन की स्थिति को सुधारने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है, परन्तु कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो लेखापरीक्षण के कार्य को चुनौतीपूर्ण बना रहे हैं। इन मुद्दों में से कुछ मुद्दे हैं, जैसे कि लेखापरीक्षण के निष्कर्षों की अधिक नकारात्मक प्रवृत्ति का होना, वित्तीय अनियमितताओं के घटने और लेखापरीक्षण के माध्यम से उनके पकड़ में आने के बीच समय का काफी अंतराल होना, सरकारों द्वारा लेखापरीक्षण के निष्कर्षों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाना, लेखापरीक्षकों के साथ लोक कार्मिकों का प्रायः कम सहयोगपूर्ण रवैया होना आदि।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम के खण्ड.....में संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने संबंधी उपबंध किये गये हैं।

2. ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद कब अस्तित्व में आया?
3. स्वतंत्र भारत के प्रथम नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक कौन थे?
4. संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में यह प्रावधान किया गया हैं कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। सत्य/असत्य
5. भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश कौन से वर्ष में जारी किया गया था?

   क. 1936 ख. 1938

   ग. 1940 घ. 1942

3.9 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात हो चुका है कि भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक लेखापरीक्षण के तंत्र का सर्वोच्च प्राधिकारी होता है। इस पद का अस्तित्व ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान हुआ और समय के साथ इस की स्वतंत्र स्थिति सुदृढ़ होती गयी। संविधान के प्रभावी होने के साथ ही यह पद संवैधानिक हो गया। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा वित्तीय मामलों में लोक प्राधिकारियों के संबंध में जो भूमिका निभायी जा रही है, वह एक प्रकार से प्रहरी की तरह होती है। वह लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक होता है। उसके प्रतिवेदन समय-समय पर वित्तीय अनियमितताओं तथा घोटालों को प्रकाश में लाते रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आपका मनन नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के बारे गहन हो सकता है।

3.10 शब्दावली

लोक निगम- लोक या संविधिक निगम लोक उद्यम का वह प्रकार होता हैं जो संसद या राज्य विधानमंडल के किसी विशेष अधिनियम के द्वारा स्थापित किया जाता है। लोक निगम की शक्तियां एवं कार्य सुस्पष्ट होते है और उसके कार्यकरण में स्वायत्ता होती है।

सरकारी कम्पनी- कम्पनी अधिनियम, 2013 की अनुच्छेद- 2 (45) के अनुसार सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है, जिसकी प्रदत्त अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत केन्द्र सरकार के द्वारा, या किसी राज्य सरकार या किन्हीं राज्य सरकारों के द्वारा, या आंशिक रूप से केन्द्र सरकार के द्वारा तथा आंशिक रूप से एक या अधिक राज्य सरकारों के द्वारा धारण किया जाता है और इसमें वह कम्पनी सम्मिलित होती हैं जो ऐसी किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी होती है।

स्वायत्त निकाय- स्वायत्त निकाय एक प्रकार से स्वशासी निकाय होता है, जिसके पास अपने नियमों को बनाने व अपने कार्यकलापों का प्रंबधन करने की स्वतंत्रता होती है।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. खण्ड-10, **2.** वर्ष 1858, **3.** वी0 नरहरि राव, **4.** सत्य, **5.** क

3.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) *Public Administration*, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. कारपोरेट कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, (2013) कम्पनी अधिनियम।
3. www.mca.gov.in/Ministry/pdf/CompaniesAct2013.pdf
4. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, पूर्व नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक।
5. https://www.cag.gov.in/former-cag
6. http://www.cag.gov.in/former-cag?page=1
7. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, (जनवरी 2014) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम,1971 पर विवरणिका।
8. https://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag_pdf/DPC2014new.pdf
9. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, हमारा मिशन, दृष्टि और मूल्य।
10. https://www.cag.gov.in/hi
11. राष्ट्रपति सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली, (जुलाई 26, 1979) वरीयता तालिका।
12. https://mha.gov.in/sites/default/files/table_of_precedence.pdf
13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) *Indian Public Administration: Institutions and Issues*, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली
2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।
3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली

4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7- लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद के विकास को समझाईये।
2. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्तों का वर्णन कीजिये।
3. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई-4 : संघ/ राज्य लोक सेवा आयोग

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 संघ लोक सेवा आयोग
    4.3.1 संघ लोक सेवा आयोग की नियुक्ति एवं पदावधि
    4.3.2 संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य का पद त्याग और पद से हटाया जाना
    4.3.3 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य
    4.3.4 संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन
    4.3.5 संघ लोक सेवा आयोग के विशेषाधिकार
4.4 राज्य लोक सेवा आयोग
    4.4.1 राज्य लोक सेवा आयोग की नियुक्ति प्रक्रिया
    4.4.2 राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य का पद त्याग
    4.3.3 राज्य लोक सेवा आयोग के कर्तव्य
    4.4.4 राज्य लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन
    4.4.5 राज्य लोक सेवा आयोग के विशेषाधिकार
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संघ तथा राज्यों के लोक सेवा आयोगों को प्रजातन्त्र का संरक्षक माना जाता है । इसके द्वारा ही राजनीतिक दबावों को कम करते हुए लोक प्रशासन को निष्पक्षता प्रदान की जाती है। अतः प्रजातन्त्र को पूर्णतया परिरक्षित करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि लोक सेवकों की भर्ती गुण-दोष के आधार पर ही होनी चाहिए। इसलिए हमारे संविधान में पुरस्कार प्रणाली के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि पूर्व में प्रचलित इस प्रणाली में केवल उन्हीं लोगों की नियुक्ति की जाती थी जो सत्ताधारी राजनीतिक दल से जुड़े होते थे। किन्तु भारत जैसे बहुभाषी, बहुधर्मी एवं विविधता से परिपूर्ण देश में लोक सेवकों की भर्ती गुणागुण के आधार पर होना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि, जिससे देश की एकता, अखण्डता और लोक प्रशासन की निष्पक्षता भलींभांति कायम रह सके।

भारतीय संविधान द्वारा स्वतंत्र रुप से, लोक सेवकों की नियुक्ति करने हेतु संघ एवं राज्यों हेतु लोकसेवा आयोगों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। इस आयोग का सृजन विशेषज्ञों के एक निकाय के रुप में किया गया है, जो निष्पक्ष ढंग से लोक सेवकों का चयन कर सके। जैसा कि प्रसिद्ध संविधानवेत्ता एम.वी. पायली ने अपनी पुस्तक ''इण्डियन कांस्टीट्यूशन'' में कहा है कि लोकसेवा आयोग का कार्य दो प्रकार से होता है पहला तो धूर्त लोगों को सेवा से बाहर रखना और दूसरा, योग्य एवं कुशल लोगों को लोक सेवाओं में लाने का हर संभव प्रयास करता है। इसीलिए आज लोकसेवकों की नियुक्ति और उनके प्रशासन की दृष्टि से लोक सेवा आयोग को प्रजातंन्त्र का आधार माना जाता है।

संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग की आवश्यकता के प्रमुख कारणों का यदि अवलोकन किया जाय तो इसे बिन्दुवार निम्नवत् रुप में समझा जा सकता हैः-

1.लोक सेवा आयोग कार्यपालिका को राजनीति एवं प्रशासन के मध्य संतुलन स्थापित करने में मदद करता है।

2.लोक सेवाओं हेतु योग्य लोगों का चयन करता है।

3.लोक सेवाओं को भ्रष्टाचार से दूर रखने में मदद करता है।

4.लोक सेवाओं से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की तकनीकि परामर्श सरकार को आवश्यकतानुसार करता रहता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्य लोक सेवा आयोग से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया जायेगा। वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण के इस दौर में शासन-प्रशासन के सम्मुख उपस्थित गम्भीर चुनौतियों की दृष्टि से संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग की गहरी समझ आवश्यक हो जाती है। अतः इस इकाई के सम्यक् एवं गहन अध्ययन के पश्चात आपः-

1.संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग के महत्व को समझ सकेंगे,

2.संघ लोक सेवा आयोग के कार्यो से अवगत हो सकेंगे,

3.संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोगों के प्रतिवेदन के महत्व को समझ सकेंगें,

4.सरकार के सम्मुख उपस्थित गम्भीर चुनौतियों का समाधान करने में आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 संघ लोक सेवा आयोग

इस इकाई के अन्तर्गत हम संघ लोक सेवा आयोग की नियुक्ति एवं पदावधि, पदत्याग तथा पद से हटाया जाना आदि की चर्चा करेंगें। आयोग के महत्वपूर्ण कार्यो का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए उसके द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदनों आदि का भी विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार हम संघ लोक सेवा आयोग से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का यहां विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

4.3.1 संघ लोक सेवा आयोग की नियुक्ति एवं पदावधि

संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष तथा नौ से दस अन्य सदस्य हो सकते हैं। राष्ट्रपति द्वारा अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति की जाती है। संविधान में अध्यक्ष या सदस्यों के लिए कोई अर्हता विहित नहीं है किन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 316 में यह कहा गया है कि यथाशक्ति निकटतम आधे ऐसे व्यक्ति होगें जो भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के आधीन 10 वर्ष तक पद धारण कर चुके हैं। इस खण्ड के अधीन भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों को जो सेवा मुक्त हो चुके हैं, को सदस्य नियुक्त किया जा रहा है। इन अनुभवी लोगों की नियुक्ति से आयोग के कार्यो के सुचारु संचालन की अपेक्षा की जाती है। उनमें यह समझ होती है की सरकार के लिए कौन सी नीतियां आज आवश्यक है और योग्य प्रत्याशियों की नियुक्ति से पूर्व उनमें कौन-कौन से गुण होने चाहिए। यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई विधिक प्रावधान

नहीं है परन्तु ज्येष्ठतम सदस्य को ही अध्यक्ष पद हेतु चुना जाता है। संयुक्त लोक सेवा आयोग की दशा में अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की पदावधि छः वर्षो तक होती हैं। ये 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने पद पर बने रहते हैं। उसमें से जो पहले पूरा होगा उसी के अनुसार अपना पद धारण करेंगे। यदि कोई सदस्य अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है तो इस स्थिति में उसका कार्यकाल पूरा छः वर्ष का ही होगा।

4.3.2 आयोग के सदस्य का पद त्याग और पद से हटाया जाना

संघ लोक सेवा आयोग या संयुक्त आयोग का सदस्य राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग कर सकता है। परन्तु संविधान के अनुच्छेद 317(4) के अनुसार कुछ दशाओं में राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय को निर्दिष्ट किए बिना ही सदस्य को हटा सकता है। ये दशायें हैं-

1. सदस्य यदि दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है;

2. अपने कार्यकाल में ही वह किसी अन्य नियोजन में लगकर अर्थ ग्रहण करता है,

3. राष्ट्रपति की राय में सदस्य मानसिक या शारीरिक शिथिलता के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है।

यदि संघ लोक सेवा का अध्यक्ष या कोई सदस्य निगमित कंपनी के सदस्य के रुप में हितबद्ध है, अर्थात अर्थ लाभ प्राप्त कर रहा है तो उसे कदाचार का दोषी माना जायेगा।

4.3.3 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य

संविधान के अनुच्छेद 320 के अन्तर्गत संघ लोक सेवा आयोग के कृत्य के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है। आयोग के कृत्य को 2 भागों में बांटा गया है-

1. संघ लोक सेवा आयोग के कर्तव्य और

2. आयोग के सलाहकारी कृत्य।

संघ लोक सेवा आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि वे क्रमशः संघ की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाओं का संचालन करें। जैसा कि अभ्यर्थियों की पात्रता की परीक्षा के लिए त्रिस्तरीय परीक्षा का आयोजन किया जाता है। प्रतियोगी द्वारा प्रारम्भिक उत्तीर्ण करने के पश्चात मुख्य परीक्षा होती है।

अन्त में मौखिक परीक्षा (साक्षात्कार) के माध्यम से उसका चयन किया जाता है। आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली विभिन्न परीक्षाओं में सबसे प्रतिष्ठित है सिविल सेवा की परीक्षा।

यदि संघ लोक सेवा आयोग से दो या दो से अधिक राज्य यह निवेदन करते है कि विशेष अर्हता वाली किसी सेवाओं में योग्य लोगों के चयन हेतु संयुक्त भर्ती की योजना बनाने में उनका मदद करे, तो संघ लोक सेवा आयोग को ऐसा करना उसका कर्तव्य होगा। इसके साथ ही आयोग उन सभी कर्तव्यों का भी निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति या राज्यपाल को परामर्श देने आदि से सम्बन्धित होंगें।

संघ लोक सेवा आयोग के सलाहकारी कृत्यों का विस्तार से उल्लेख निम्नवत बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा रहा है:-

1. आयोग सिविल सेवा भर्ती से सम्बन्धित विषयों पर सलाह देगा,

2. आयोग एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नति और अन्तरण से सम्बन्धित सिद्धान्तों के साथ ही योग्य अभ्यर्थियों से सम्बन्धित परामर्श देता है।

3. सिविल सेवकों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही से सम्बन्धित प्रकरण आदि पर वह परामर्श देता है।

4. कानूनी खर्चे की प्रतिपूर्ति से सम्बन्धित परामर्श देता है, और

5. शासकीय सेवा करते हुए घायल हो जाने की स्थिति में पेंशन प्रदत्त करने से सम्बन्धि परामर्श उसके द्वारा दिया जायेगा।

परन्तु उपर्युक्त परामर्श लेना सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं होता। इसके बिना भी सरकार कोई भी कार्यवाही कर सकती है। इसे विधि विरुद्ध नहीं माना जायेगा। आयोग का कार्य केवल सलाह देना है वह सरकार पर बाध्यकारी नहीं है। किन्तु यदि सरकार आयोग की सलाह को मानने से इन्कार करती है तो उसे कारणों सहित एक प्रतिवेदन संसद के समक्ष प्रस्तुत करना होगा।

संविधान के अनुच्छेद 320(4) द्वारा भी आयोग के परामर्श का दो मामलों में अपवर्तन किया गया है। पहला अनुच्छेद 16(4) के मूलाधिकार के अनुसार नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्ति की स्थिति में और दूसरा, अनुच्छेद 335 के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की नियुक्ति की स्थिति में भी परामर्श का अपवर्जन संविधान द्वारा किया गया है।

4.3.4 संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन

संघ लोक सेवा आयोग प्रतिवर्ष अपने कार्यो से सम्बिन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करता है। इन प्रतिवेदनों को संसद के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति रखवाता है। इन प्रतिवेदनों को

सरकार अपवाद को छोड़ दिया जाय तो स्वीकार करती है। उदाहरण के लिए 1950 से 2004 तक आयोग द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों में से केवल 154 को ही नहीं स्वीकार किया गया। इसी से आयोग की महत्ता स्पष्ट हो जाती है कि आयोग अपनी सिफारिशों एवं प्रतिवेदनों के माध्यम से सरकार हो हर स्तर पर सहयोग प्रदान करता है।

4.3.5 संघ लोक सेवा आयोग के विशेषाधिकार

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की स्वतंन्त्रा को सुनिश्चित करने हेतु निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैः-

1. आयेाग के अध्यक्ष एवं सदस्यों को संविधान द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही पदच्युत किया जा सकता है।

2. आयेाग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की सेवा शर्तो में उनके कार्यकाल के दौरान कोई हानिकारक परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

3. आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का वेतन भत्ता एवं अन्य व्यय भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं। इस पर संसद में मतदान भी नहीं किया जा सकता है।

4. आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों को पुनः उसी पद अथवा सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार इन उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों द्वारा संघ लोक सेवा आयोग की स्वतन्त्रता को हर संभव सुनिश्चित किया गया है।

4.4 राज्य लोक सेवा आयोग

अब हम राज्य लोक सेवा आयोगो की नियुक्ति एवं पदावधि, पदत्याग और उसके कर्तव्यों का सविस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही आयोग के प्रतिवेदन एवं विशेषाधिकार का भी विवेचन करेंगे।

4.4.1 राज्य लोक सेवा आयोग की नियुक्ति प्रक्रिया

भारतीय संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग का प्रावधान किया गया है। यदि दो या अधिक राज्य इस बात पर सहमत हों कि उनके लिए एक संयुक्त लोक सेवा आयोग हो तो विधान मण्डल द्वारा पारित संकल्प के पश्चात संसद कानून बनाकर एक संयुक्त लोक सेवा आयोग स्थापित कर सकती है। आयोग में एक अध्यक्ष और कुछ सदस्य होते हैं। जहाँ संयुक्त लोक सेवा

आयोग की दशा में सेवा की शर्तें राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती हैं वहीं राज्य लोक सेवा आयोग की दशा में राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जाता है। आयोग की सेवा शर्तों में उसके कार्यकाल के दौरान किसी भी प्रकार का अलाभकारी परिवर्तन नहीं होगा।

राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष तथा सदस्य बनने के लिए कोई अर्हता संविधान में उल्लिखित नहीं किया गया है। किन्तु अनुच्छेद 316 में यह कहा गया है कि आधे से अधिक ऐसे व्यक्ति होंगें जो भारत सरकार या राज्यों की सरकार के अधीन 10 वर्षों का पद धारण कर चुके हैं। आयोग का सदस्य अपने पद पर छः वर्ष अथवा 62 वर्ष की उम्र तक जो इसमें से पहले हो जाय पद धारण करता है।

4.4.2 राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य का पद त्याग

राज्य लोक सेवा आयेाग का सदस्य राज्यपाल को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग कर सकता है। सदस्य को अवधि से पूर्व हटाने के लिए संविधान में उपबन्ध है। कदाचार के आधार पर किसी भी सदस्य को राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय की जांच के पश्चात हटाता है। राज्य आयेाग के किसी भी सदस्य को हटाने का अधिकार राज्यपाल को नहीं अपितु राष्ट्रपति के पास है। यद्यपि कदाचार की परिभाषा नहीं दी गयी है परन्तु रिश्वत लेना, निष्पक्ष न होना, तथ्यों के साथ छेड़-छाड़ करना आदि कदाचार की श्रेणी में आते हैं। राष्ट्रपति ऐसे सदस्यों को उच्चतम न्यायालय के निर्देश लिए बिना भी हटा सकता है जो दिवालिया घोषित हो जाय अथवा किसी भी अन्य नियोजन में लग जाय, अथवा मानसिक रूप से अक्षम हो जाने की स्थिति में भी उसे पद से हटाया जा सकता है।

राज्य सेवा आयोग का सदस्य संघ लोक सेवा आयेाग के अध्यक्ष व सदस्य के पद पर नियुक्त हो सकता है किन्तु सरकार के अधीन राज्यपाल का पद छोड़कर अन्य कोई भी पद धारण नहीं कर सकता है।

4.4.3 राज्य लोक सेवा आयोग के कर्त्तव्य

संविधान के अनुच्छेद 320 के अन्तर्गत आयोग के कर्तव्यों का उल्लेख है जिसे दो भागों में बांटकर भली-भांति अध्ययन किया जा सकता है-

1. आयोग के कर्तव्य,

2. आयोग के सलाहकारी कार्य आदि।

राज्य लोक सेवा आयोग का सबसे पहला एवं सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है नियुक्तियों हेतु परीक्षाओं का आयोजन करना। संयुक्त नियोजन एवं भर्ती हेतु योजना बनाने में सहायता करना, भर्ती आदि के तरीकों के सम्बन्ध में नियम बनाने की स्थिति में सहयोग करना, पदोन्नति एवं अनुशासनात्मक मुद्दों पर परामर्श देना। कानूनी खर्चे की प्रतिपूर्ति तथा सेवा में रहते हुए किसी घायल व्यक्ति के पेंशन आदि के सम्बन्ध में सलाह अथवा परामर्श देने का कार्य राज्य लोक सेवा आयोग करता है।

आयोग सरकार को केवल सलाह देता है किन्तु यह सलाह आबद्धकर नहीं है। किन्तु सरकार द्वारा आयोग के किसी सलाह को न मानने की स्थिति में विधानमण्डल के समक्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

जैसा कि संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष डा॰ ए॰ आर॰ किदवई ने आयोग के कार्यो की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है कि ''वास्तव में संघ लोक सेवा आयोग विभिन्न संगठित सेवाओं में भर्ती के लिए, साक्षात्कार के माध्यम से चयन करता है, भर्ती के नियम बनाता है, नई सेवाओं का गठन करता है, पदोन्नति के लिए सिद्धान्त बनाता है, अनुशासनात्मक मामलों में परामर्श भी देता है।'' इस प्रकार इसे आयोग के कर्तव्यों की एक समग्र रूपरेखा कहा जा सकता है।

4.4.4 राज्य लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन

राज्य लोक सेवा आयोग अपना प्रतिवेदन प्रतिवर्ष राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत करता है जिसे राज्यपाल विधानमण्डल में रखवाता है। इन प्रतिवेदनों को सरकार ने स्वीकार ही किया है, शायद ही कभी अस्वीकार की हो। आयोग अपने इन महत्वपूर्ण प्रतिवेदनों के साथ सरकार को सहयोग देता रहता है।

4.4.5 राज्य लोक सेवा आयोग के विशेषाधिकार

राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने हेतु संविधान में उपबन्ध किये गये हैं-

1. अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि प्रसाद पर्यन्त नहीं होती है। ये निश्चित अवधि के लिए (62 वर्ष तक की आयु पूरी होने तक) पद धारण कर करतें हैं।

2. आयोग के सदस्यों को संविधान में विहित उपबन्धों के आधार पर ही, दी गयी विधि के अनुसार केवल राष्ट्रपति द्वारा ही हटाया जा सकता है।

3. आयोग के सदस्यों की सेवा शर्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात किसी प्रकार का अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

4. आयोग के सदस्यों का वेतन भत्ता एवं अन्य खर्चे भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।

5. आयोग का सदस्य अपनी सेवा की समाप्ति के पश्चात भारत सरकार या राज्य सरकार, के अधीन किसी लाभकारी पद पर आसीन नहीं हो सकता। परन्तु वह संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य या अध्यक्ष बन सकता है। इसके साथ ही राज्यपाल का पद धारण करने हेतु भी वह पात्र होता है। क्योंकि राज्यपाल का पद लाभ का पद नहीं अपितु एक संवैधानिक पद होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि राज्य लोक सेवा आयोग को संविधान द्वारा ही सुरक्षा या स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है जिससे वह निष्पक्षतापूर्वक अपने कर्तव्यों का भलींभाति निर्वहन कर सके। आयोग को दिये गये महत्वपूर्ण दायित्वों की दृष्टि से भी उसे उपर्युक्त विशेषाधिकार प्राप्त होना ही चाहिए ताकि वह राजनीतिक दबावों से मुक्त रहकर काम कर सके। यहां तक कि उसके वेतन व भत्ते के सम्बन्ध में विधान मण्डल में मतदान नहीं किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति की जाती है?

A. संसद द्वारा B.राष्ट्रपति द्वारा

C. राज्यपाल द्वारा D.अन्य

2. लोक सेवा आयोग सम्बन्धी प्रावधान संविधान के किस भाग के अन्तर्गत किया गया है?

A.भाग , दस B.भाग, इग्यारह

C. भाग , चौदह D.भाग , पन्द्रह

3. अखिल भारतीय सेवाओं का प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है?

A. अनुच्छेद, 308 B.अनुच्छेद, 309

C. अनुच्छेद, 311 D.अनुच्छेद 312

4. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों को हटाया जा सकता है?

A.राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय की सलाह पर B.राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय की सलाह पर

C.संसद द्वारा D.विधान मण्डल द्वारा

5. राज्य लोक सेवा आयोग अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है?

A.उच्च न्यायालय में	B.उच्चतम न्यायालय में
C.राष्ट्रपति के समक्ष	D.राज्यपाल के समक्ष

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपने संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोगों की नियुक्ति, पदावधि, पदत्याग, पद से हटाया जाना तथा उसके कार्यो, विशेषाधिकार और उसके प्रतिवेदनों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। कार्मिक वर्ग की नियुक्ति और उनके प्रशासन की दृष्टि से संघ लोक सेवा आयोग को लोकतन्त्र का आधार माना जाता है। इसी प्रकार राज्यों में लोक सेवकों की नियुक्ति की दृष्टि से राज्य लोक सेवा आयोग की महत्वर्पूण भूमिका होती है। प्रजातन्त्र के परिरक्षण हेतु यह आवश्यक भी है कि स्थायी सिविल सेवकों की नियुक्ति केवल गुणों के आधार पर ही हो। स्वतन्त्रता केपश्चातअपनाये गये भारतीय संविधान में पुरस्कार प्रणाली का परित्याग कर दिया गया। इस प्रणाली में सत्ताधारी दल से जुड़े हुए लोगों को नियुक्ति किया जाता था।

भारत जैसे बहुभाषी और बहुधर्मी देश में यह आवश्यक ही हो जाता है कि देश की सबसे प्रतिष्ठित स्थायी सिविल सेवकों की नियुक्ति न्यायपूर्ण ढंग से हो जिससे देश की एकता और अखण्डता बनी रहे। इसीलिए संविधान में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़ेवर्गो एवं महिलाओं हेतु कुछ पदों हेतु आरक्षण प्रदान किया गया है, जिससे सिविल सेवा में उनका भी समुचित प्रतिनिधित्व हो सके। इसीलिए संविधान ने सभी प्रकार के राजनीतिक दबावों से मुक्त रहते हुए एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में काम करने हेतु आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों को पद की सुरक्षा भी प्रदान की है।

संघ एवं राज्यों के लोक सेवा आयोगों को लोकतन्त्र का संरक्षक माना जाता है। ये लोक प्रशासन को निष्पक्षता प्रदान कर उसे राजनीतिक दबावों से बचाने का हर संभव प्रयास करते हैं। जैसा कि संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष ए० आर० किदवई के अनुसार-''संसदीय लोकतन्त्र में लोक सेवा आयोगों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है। संसदीय लोकतन्त्र में लोक सेवकों की भर्ती गुण के आधार पर होना आवश्यक है और यह काम लोक सेवा आयोगों के माध्यम से ही संभव है।'' इसी प्रकार का विचार प्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ एम० वी० पायली ने भी दिया है कि-''लोक सेवा आयोग दो प्रकार का कार्य करता है-पहला, धूर्त लोगों को सेवा से बाहर करता है और दूसरा, योग्य व्यक्तियों को लोक सेवा में लाने का हर संभव प्रयाश करता है।'' इस प्रकार लोक सेवा आयोग सिविल सेवा हेतु योग्य व्यक्तियों का चयन कर लोक प्रशासन के सुचारु संचालन की दिशा तय करता है। यह लोक सेवा जैसे महत्वपूर्ण पद को भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार से दूर रखता हैं। किन्तु वर्तमान में भ्रष्टाचार ही देश के सम्मुख एक गम्भीर समस्या बनकर खड़ी है। इन चुनौतियों से निपटने में लोक सेवा आयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की क्षमता रखता है।

संविधान में लोक सेवा आयोग को सलाहकारी भूमिका भी प्रदान की गयी है। यद्यपि सरकार पर आयोग की सलाह बाध्यकारी नहीं है, फिर भी अधिकांश सलाहों को अब तक सरकार द्वारा स्वीकार करने की अच्छी परम्परा रही है। संविधान में यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि सरकार आयोग की सलाह को मानने से इंकार करती है तो कारणों सहित एक प्रतिवेदन संसद व विधान मण्डल के सम्मुख रखना आवश्यक होगा। जैसा संविधान विशेषज्ञ एम॰ वी॰ पायली ने कहा कि-''आयोग की सिफारिशें केवल परामर्श के रूप में पेश किये जाने पर अधिक प्रभावशाली होती हैं। यदि वे बाध्यकारी होती तो शायद कम प्रभावशाली होतीं। यदि आयोग को बाध्यकारी सत्ता प्रदान कर दी गयी तो इस बात का भय है कि सरकार तथा अयोग के मध्य विवाद उत्पन्न हो और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिनमें दोनों एक ही से अधिकार के अन्तर्गत अलग-अलग संस्थायें बन बैठे और प्रत्येक अपनी इच्छा दूसरों पर लादने का प्रयास करने लगें। वहीं पर इसके विपरीत विचार है संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष आर॰ सी॰ एस॰ सरकार का कि आयोग की सिफारशों को सरकार के लिए बाध्यकारी कर दिया जाय। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि सरकार के लिए आयोगों की सिफारिशें बहुत ही महत्वपूर्ण होती हैं। इसीलिए सरकार इन सिफारिशों को जल्दी नजरन्दाज नहीं कर पाती है।

लोक सेवा आयोगों की कुछ दुर्बलताएं भी रही हैं जिस पर चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। दुर्बलताओं के कारण समय-समय पर आयोगों को आलोचना भी सुननी पड़ी है। पहली आलोचना होती है आयोग के सदस्यों की योग्यता पर, जिसके आधार पर उनकी नियुक्ति होती है। जैसा कि पूर्व राज्यपाल धर्मवीर ने कहा था कि राज्यों में आयोग के अध्यक्ष का पद स्नातक तक को दे दिया जाता है जो कि वे उस पद के अनुकूल योग्यता नहीं धारण करते हैं। कुछ नियुक्तियां पूर्णतया राजनीति से प्रेरित होकर की गयी थी। यह भी देखा गया है कि कई आयोग यथोचित समय पर अपना प्रतिवेदन भी राष्ट्रपति व राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत नहीं करते हैं। कई राज्यों के आयोगों ने लगातार कई वर्षों तक अपना प्रतिवेदन न देने की एक परम्परा ही बना ली है, जिसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति घोर उपेक्षा या उदासीनता ही माना जायेगा। इसके साथ यह भी देखा गया कि राज्यों की सरकारें प्रायः आयोग की सिफारिशेां को नजरन्दाज ही कर देती हैं। इससे आयोग की महत्ता में कमी भी हुई है। इसके साथ ही सरकार तदर्थ नियुक्तियों एवं समय-समय पर उसके कार्यकाल में वृद्धि करके आयोग के अधिकारों का हनन किया है। इसे नियुक्ति का एक अलग तरीका सरकारों द्वारा समझ लिया गया है। इसका समय-समय पर विरोध भी हुआ कि आयोग से बाहर सरकार को नियुक्ति का कोई भी अधिकार नहीं होना चाहिए। आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर संसद और विधान मण्डलों में समुचित वाद-विवाद का अभाव होता जा रहा है। राज्य सरकारें तो आयोग के साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं करती हैं। व्यवहार में आयोगों के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन भत्ता मुख्यमंत्री की इच्छा पर निर्भर होता हैं। यहाँ पर आयोग के सदस्य एवं अध्यक्ष की स्वतंन्त्रता बाधित होती है जिससे वह

अपना कर्त्तव्य भलीभांति नहीं निभा पाता। इसीलिए विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा भी था कि आयोग के सदस्यों का आचारण पक्षपात पूर्ण रहा है। डा॰ सी॰ पी॰ भाम्भरी ने लोक सेवा आयोग को 'बन्द नौकरशाही निगम' तक कहा है। क्योंकि यह अपने भर्ती के तरीकों द्वारा स्थापित नौकरशाही को निरन्तर बनाये रखता है।

वर्तमान में लोक सेवा आयोग के सम्मुख उपस्थित गम्भीर चुनौतियों के मद्देनजर उसके कार्यो एवं भूमिका में सुधार हुआ है, परन्तु अभी और भी सुधार होने चाहिए। अयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन-भत्ते में पुनरीक्षण के साथ आवश्यक हो गया है । आयोग का सदस्य केवल उन्ही व्यक्तियों को बनाया जाय जिनका दामन बेदाग हो और जो अपने क्षेत्र में दक्ष भी हों। इसके साथ ही लोक सेवकों की भर्ती की प्रक्रिया को और भी पारदर्शी बनाना चाहिए।

अन्ततः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते है कि संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग अपने कर्तव्यों का भली-भांति निर्वहन करते हुए लोकतन्त्र का हर संभव परिरक्षण कर रहा है। संसद एवं विधानमण्डलों में इसके कार्यो की समय-समय पर प्रशंसा भी की जाती रही है। आज भ्रष्टाचार एवं सन्तुलित विकास की गम्भीर चुनौती इसके सम्मुख उपस्थित है जिसका सामना करने की क्षमता इसमें विद्यमान है, परन्तु आज आवश्यकता है सरकारी प्रोत्साहन एवं सहयोग की जिससे वह राजनीतिक दबावों से मुक्त रहते हुए अपने दायित्वों का भलीं-भॉति निर्वहन कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग योग्य, लोक सेवकों का चयन कर संसदीय लोकतन्त्र को पूरी तरह संरक्षित करता है। यह लोकतन्त्र का आधार है जो राजनीति एवं प्रशासन के मध्य सन्तुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4.6 शब्दावली

1.नियोजन- अध्यक्ष एवं सदस्य द्वारा अपने कार्यकाल के दौरान किसी लाभ के पद का ग्रहण करना।

2. पदावधि- कार्यकाल।

3. प्रतिवेदन- आयोग द्वारा प्रतिवर्ष राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को भेजी जाने वाली रिपोर्ट।

4. विशेषाधिकार-संविधान द्वारा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों को दी गयी पद की सुरक्षा।

5. पुरस्कार प्रणाली-लोक सेवको के पद पर अपने सम्बन्धियों की नियुक्त करने की पूर्व में प्रचलित प्रणाली।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. B, 2. C, 3. D, 4. A, 5. D

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.शर्मा, ब्रज किशोर (2007), 'भारत का संविधान'पेरेटिस हाल आफ इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.'भारत का संविधान' (2000) भारत सरकार विधि न्याय एवं कंपनी कार्य मंत्रालय।

3.फड़िया, बी.एल. (1977) ''भारत में संघ तथा राज्यों के लिए लोक सेवा आयोगः भूमिका निर्धारण की समस्या'', राज्य शासन समीक्षा, जयपुर।

4.पायली, एम.वी., ''इण्डियन कांस्टीट्यूशन''।

5.किदवई, ए.आर., ''संविधान और लोक सेवा आयोगों की भूमिका''।

4.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भाम्भरी, सी.पी., ''पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया'।

2.मुतालिब, एम. ''इण्डियन यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन'', लंदन लोक प्रशासन संस्थान, प्रकाशन।

3.'भारत का संविधान' (2000) भारत सरकार विधि न्याय एवं कंपनी कार्य मंत्रालय।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1 संघ लोक सेवा आयोग की नियुक्ति प्रक्रिया एवं कार्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कीजिए।

2 राज्य लोक सेवा आयोग के कर्तव्य एवं विशेषाधिकारों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

इकाई 5 भारत में दलीय राजनीति

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल
5.4 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल
5.5 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं
    5.5.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार
    5.5.2 राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व
    5.5.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना
    5.5.4 दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में
    5.5.5 राजनीतिक अस्थिरता
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्यवस्थापिका कार्यपालिका में संबंध के आधार पर संसदीय शासन प्रणाली, शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहां भारत का अध्ययन कर रहे हैं भारत की दलीय प्रणाली की बात करना चाहते हैं। इसलिए भारत में किस प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई गई है सबसे पहले उसका जिक्र करना है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना की गई है और उसके प्रकार के रूप में देखा जाए तो संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई है। हम जानते हैं आप सभी अपने पूर्व की कक्षा में पढ़ चुके हैं की संसदीय शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का घनिष्ठ संबंध अर्थात कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही होता है। दूसरी प्रमुख विशेषता है कि यहां नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 (३) स्पष्ट उल्लेख है की मंत्रिपरिषद जिसे कार्यपालिका कहते हैं यह सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदाई है।

जैसा कि स्पष्ट है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। संसदीय शासन प्रणाली, प्रतिनिधि शासन प्रणाली भी कहते हैं। अर्थात इसमें शासन जनता के प्रतिनिधि के द्वारा किया जाता है और यह सीधे जनता के प्रति उत्तरदाई होते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. भारत में शासन के प्रमुख रूप के बारे में जान सकेंगे

2. भारत में लोक्तंत्र में दलीय प्रणाली के बारे में अध्ययन क्र सकेंगे

3. स्वतंत्रता के पूर्व व स्वतंत्रता के बाद के दल और उसकी कार्यशैली के बारे में जान सकेंगे

5.3 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल

यहां वह भी स्पष्ट करना आवश्यक की प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालक में राजनीतिक दलों की बड़ीं महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि लोकतंत्र को व्यवहारिक घरातल पर उतारने के लिए यह आवश्यक है नियतकालिक चुनाव । एक निश्चित समय पर चुनाव हो । सभी नागरिकों को मत का अधिकार तथा चुनाव की प्रक्रिया में नागरिकों को अनेक विकल्प उपलब्ध हों। विकल्पों की उपलब्धता जिसमें अपनी पसंद के विकल्प के रूप में प्रत्याशी को मत देकर विजयी बनाया जा सके इसलिए वहां पर यह उल्लेखनीय है की संसदीय लोकतंत्र के संचालन इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने

के लिए विकल्पों के रूप में राजनीतिक दलों की उपस्थिति होती है । राजनीतिक दल ही अपनी प्राथमिकताओं अपने मूल्यों और सिद्धांतों के आधार पर जनता से समर्थन मांगते हैं। उसके आधार पर जनता प्रत्याशियों को मतदान करने या न करने का या किसे करना है निर्णय लेते हुए मतदान करते हैं और अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं। इस प्रकार से प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालन उत्तरदाई लोकतंत्र के संचालन में संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण और अनिवार्य भूमिका है।

क्योंकि अलग-अलग देशों के सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक परंपराएं अलग-अलग होती हैं इसलिए राजनीतिक दलों की संरचना उनकी कार्यप्रणाली उनकी प्राथमिकताएं उनके आदर्श उनके गंतव्य, उनके लाभ इनमें भी भिन्नता पाई जाती है। कई बार दो अलग-अलग, दो या दो से अधिक अलग-अलग देशों में कितनी प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई जाती है सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में भिन्नता के कारण राजनीतिक राजनीतिक दलों की संरचना और कार्य प्रणाली में भी भिन्नता दिखाई देती है और यह बात भारत के भी संदर्भ में लागू है । भारत में राजनीतिक दलों के उद्भव के विषय को ध्यान में रखकर बात करें इसको हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के राजनीतिक दल दूसरा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के राजनीतिक दल |

5.4 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल

इस इकाई के अध्ययन है हमें देखेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ और तत्कालीन परिस्थिति में अर्थात साम्राज्य काल में राजनीतिक दलों की प्राथमिकताओं और मूल्यों के आधार पर काम किया तथा स्वतंत्रता के बाद अभी तक जो राजनीतिक दल हैं और जो नए राजनीतिक दल बने वह किन मूल्यों और आदर्शों को लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एक नई प्रकार की दलीय प्रणाली के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारत में दल प्रणाली के उद्भव में 1885 में कांग्रेस की स्थापना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यदि कांग्रेस की स्थापना का उद्देश की काफी अस्पष्टता है क्योंकि स्थापना एक ब्रिटिश अधिकारी ने की जिसका उद्देश्य ऐसे संगठन की स्थापना करना था जो ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सेफ्टी वाल्व का कार्य कर सकें।

परंतु समय के साथ यह कांग्रेस देश की स्वतंत्रता आंदोलन का वाहक बना, मंच बना, जहां सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोग जो भारत में निवास करते थे अपनी भिन्नता के बावजूद एक मुख्य लक्ष्य अर्थात स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर के आगे बढ़े इसलिए कांग्रेस का विकास एक राष्ट्रीय मंच के रूप में में होने लगा।

जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई उस समय गांधीजी ने इसे समाप्त करने की बात की लेकिन उनके स्वयं के इस बात को इनकार करते हुए सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को शामिल करना तत्कालीन नेतृत्व ने उचित समझा और उसी के अनुरूप कार्य किया। जैसा कि हम सभी अवगत हैं कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन का एक मंच है इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद के चुनाव में कांग्रेस को लगातार बढ़त प्राप्त होती रही, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों, के पीढी इस बात से अवगत थी कि जिन उद्देश्यों और आकांक्षाओं को लेकर के कांग्रेस के ध्वज तले स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी गई आकांक्षाओं की पूर्ति में निश्चित रूप से यह दल प्राथमिकता के आधार पर कार्य करेगा इसलिए 1952 के लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 तक कांग्रेस बहुत ही प्रभावशाली स्थिति में रही परन्तु 1967 में विधानसभा चुनाव में कई राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन सरकारों का गठन हुआ और सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को चुनौती मिलने लगी |

इसी के साथ देश स्वतंत्रता के पूर्व 1906 मुस्लिम लीग 1916 में हिंदू महासभा का गठन हुआ जहां मुस्लिम भारत की स्वतंत्रता के साथ पाकिस्तान की मांग को आगे बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा था वहीं हिंदू महासभा हिंदू समाज और संस्कृति को सुरक्षा प्रदान करें और हिंदू राष्ट्र की स्थापना के संकल्प के साथ आगे कार्य जारी रखा इसके साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय दलों का उद्भव हुआ जिसने अपने अपने क्षेत्र में अल्पकालिक और महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव की दिशा में कार्य किया

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो एक अन्य महत्वपूर्ण दल था जिसकी स्थापना 1924 हुई वह साम्यवादी दल है।गांधी जी के कहने के बाद भी उनके उत्तराधिकारी ने कांग्रेस को विघटित नहीं किया और स्वतंत्रता आंदोलन के मंच के रूप में कार्य करने वाले कांग्रेसी ने सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में अपने आप को शामिल करते हुए एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया।

5.5 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं

उक्त के साथ स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक दल का गठन हुआ 1951 में जिसका नाम भारतीय जनसंघ तथा 1959 में स्वतंत्र पार्टी का गठन इस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दल की स्थापना हुई राजनीतिक दल के रूप में भारत को स्वतंत्र कराना परंतु स्वतंत्रता के पश्चात यही राजनीतिक दल अब अपनी प्राथमिकताओं के साथ चुनाव प्रक्रिया में शामिल होने वाले थे। और इन सब की सामूहिक गतिविधि से भारत में दलीय प्रणाली का विकास हो रहा है। यद्यपि स्वतंत्रता के तुरंत के बाद के समय में कांग्रेस महत्वपूर्ण और प्रभावशाली स्थिति में रही । बाकी विशेष प्रभाव नहीं रखते थे क्योंकि जैसा कि हमने पूर्व में अध्ययन किया है कि क्योंकि कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन का राष्ट्रीय मंच था इसलिए जनता के विश्वास का भी प्रतीक था । फलस्वरुप स्वतंत्रता के पश्चात के

दिनों में कांग्रेस देश के जनमानस की पहली पसंद होने का अवसर प्राप्त हुआ पर 1967 के बाद की चुनाव में देश में बहुत से बदलाव दिखाई देते हैं। यह सभी मिलकर के देश की दलीय प्रणाली को एक रूप देने में अपना योगदान देते हैं और इस दलीय प्रणाली की जो भारत में स्वतंत्रता के बाद के दिनों में संसदीय शासन प्रणाली के संचालक को करते हुए विकसित हुई है, उसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

5.5.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में भाग 3 में मौलिक अधिकार का प्रावधान किया गया जिसमें वर्तमान समय में छह मौलिक अधिकार इनमें स्वतंत्रता के अधिकार का प्रावधान अनुच्छेद 19 से 22 तक किया गया है। अनुच्छेद 19 प्रत्येक भारतीय नागरिक को संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है इस अधिकार का प्रयोग करते हुए देश के किसी भी नागरिक को राजनीतिक दल के संगठन और उस को संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है की इस प्रकार के अधिकार लोकतांत्रिक देश में ही पाए जाते हैं किसी सर्वाधिकारवादी देश में या साम्यवादी देश में नहीं पाए जाते हैं।

5.5.2 राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व

क्योंकि भारत में सामाजिक सांस्कृतिक भाषा क्षेत्र धर्म निवास स्थान आदि को ले करके भिन्नता भिन्नता पाई जाती है | इन हितों के प्रतिनिधित्व करने वाली देश में बहुत से दलों का विकास हुआ जहां देश में आज पंजीकृत राजनीतिक दलों की संख्या 500 से अधिक है लेकिन जैसा कि प्रारंभ में हमने यह देखा है यह अध्ययन किया है की स्वतंत्रता के उपरांत यदि आज तक के इतिहास को देखा जाए तो हम पाते हैं कि देश में राजनीतिक दलों की तो बहुलता है। परंतु प्रभुत्व प्रायः एक दल का ही दिखाई देता है क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 के लोकसभा चुनाव तक कांग्रेसका वर्चस्व दिखाई देता है। 1967 के विधानसभा चुनाव में कुछ राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन की सरकारों का गठन हुआ | कांग्रेस को क्षेत्रीय दलों से चुनौती मिली लेकिन 1971 के चुनाव में कांग्रेस बहुमत प्राप्त की। यद्यपि 1977 के चुनाव में कांग्रेस को भारी हार का सामना करना पड़ा और जनता पार्टी को विजय प्राप्त हुई लेकिन 1980 के चुनाव में कांग्रेस मजबूती के साथ आगे बड़ी | इसी प्रकार 1984 के चुनाव में इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात हुआ था इसमें कांग्रेस को बड़े पैमाने पर जीत दर्ज हुई और विपक्ष बहुत कमजोर होता हुआ दिखाई दिया | 1989 में कांग्रेस के चुनाव लड़ा उसे बढ़त प्राप्त हुई और कांग्रेस प्रमुख मजबूत विपक्ष के रूप में अस्तित्व में आया लेकिन पुनः 1991 के चुनाव में और बाद के चुनाव में लगातार गठबंधन की सरकारें बनी और एनडीए की सरकारों को छोड़ दिया जाए तो सभी चुनाव में कांग्रेस प्रभावशाली स्थिति में रही

अब विपक्ष बहुत मजबूत स्थिति में नहीं रहा इस प्रकार से दिखाई देता है। राष्ट्रीय राजनीति विपक्ष के प्रभाव काफी सीमित दिखाइ देते हैं और वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व को काफी बढ़त हासिल हुई जिसमें भारतीय जनता पार्टी प्रमुख भूमिका में दिखाई देती है इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्तमान समय तक पूरी भारतीय चुनाव प्रणाली में दिखाई देता है कि देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय आधार पर राजनीतिक दल तो बहुत बड़े पैमाने पर उभरे लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो सामान्यतया वह राष्ट्रीय राजनीति में बहुत प्रभावशाली स्थिति में नहीं दिखाई देते और एक दल ही महत्वपूर्ण स्थिति में दिखाई देता है।

5.5.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना

स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में चुनाव प्रक्रिया को देखते हैं तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि देश में प्रायः मजबूत विपक्ष नहीं दिखाई देता है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के संचालन के लिए सशक्त मजबूत और रचनात्मक विपक्ष होना का आवश्यक है क्योंकि वह सरकार को सचेत करता है और जनमानस की आवाज को सरकार तक पहुंचाने का कार्य करता है। चुनाव परिणाम की दृष्टि से देखा जाए तो प्रथम आम चुनाव 1952 से लेकर 1984 तक कांग्रेस महत्वपूर्ण स्थिति में रही है और उसे लोकसभा में 50% से अधिक स्थान प्राप्त हुए, अपवाद के रूप में केवल 1977 के चुनाव में जनता पार्टी को लोकसभा में मिले स्थान को रखा जा सकता है जिसमें उसने बहुमत के आधार पर सरकार का गठन किया यद्यपि वह सरकार 80 के चुनाव में उसे पराजय का सामना करना पड़ा इसलिए इसके आगे भी जब देखें तो 1980 और 1984 के चुनाव में भी कांग्रेस मजबूत स्थिति में रही। आगे 1989 के चुनाव में गठबंधन की सरकार बनी क्योंकि किसी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि भारत में विविधता है विविधता के कारण समय के साथ देश में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उदय हुआ जिसकी वजह से चुनाव में खंडित जनादेश प्राप्तहुए। किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ जिससे एक गठबंधन की सरकार बनी इसके बाद भी 1991 के चुनाव में भी कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी चल रही लेकिन गठबंधन की ही सरकार बनी बादके दिनों में भी गठबंधन की सरकार और अस्थिर सरकार दिखाई देती है कि क्योंकि क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं और उनके नेताओं की व्यक्तिगत आकांक्षाओं के तहत गठबंधन में शामिल तो होकर सरकार बनाने का कार्य कर रहे थे लेकिन उनकी आकांक्षाएं तुष्ट ना होने की स्थिति में सरकार गिराने का भी कार्य कर रहे थे। यह सिलसिला 1999 तक बड़ी तीव्र गति से चला परंतु 1999 के चुनाव में एनडीए कि सरकार भाजपा के नेतृत्व में बनी जिसने अपने 5 वर्ष के कार्यकाल को पूरा किया बावजूद इसके विपक्ष की संख्या तो काफी थी लेकिन विपक्ष की एकजुटता न होने की वजह से एक मजबूत विपक्ष का उदय नहीं हो

पाया | उसके पश्चात 2004 और 2009 के चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए की सरकार बनी जिसने अपने कार्यकाल को पूर्ण किया परंतु एक राजनीतिक दल के रूप में तो सत्ता पक्ष में कोई बहुमत की स्थिति में नहीं था। विपक्ष के रूप में कोई ऐसा राजनीतिक दल नहीं था जो सत्ता पक्ष पर निर्णायक दबाव और प्रभाव बनाने की स्थिति में रहे। यद्यपि 2004 से 2014 तक भारतीय जनता पार्टी ने विपक्ष के रूप में काफी सक्रिय भूमिका करते हुए दिखाई देती है और 2014 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार बनी साथ ही इसमें अभी महत्वपूर्ण बात हुई की इस गठबंधन की सरकार में भारतीय जनता पार्टी एक राजनीतिक दल के रूप में स्वयं में बहुमत प्राप्त दल था | इसलिए एक मजबूत सरकार का गठन हुआ लेकिन विपक्ष की स्थिति पुनः हाशिए पर ही रहे क्योंकि जहां विपक्ष संख्या बल में कम था वहीं विपक्ष अपनी नीतियों कार्यक्रमों और अपनी प्राथमिकताओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। राष्ट्रीय रुझानों को लेकर के स्पष्ट नहीं था राष्ट्र की आकांक्षाओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। कई बार तो विपक्ष के कुछ दलों के द्वारा ऐसे व्यवहार टिप्पणियां करते हुए देखी गई जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता जैसे गंभीर विषयों की अनदेखी करते हुए भी दिखाई दिए | इसलिए जनता के सरोकारों से विपक्ष मजबूती से जुड़ने में असफल रहा | इसलिए यह कहा जा सकता है की आजादी के बाद अभी तक देश में एक मजबूत सशक्त राष्ट्रीय और विकास के सरोकारों से युक्त विपक्ष नहीं दिखाई दिया है खास तौर से यह बात गठबंधन के दौर में और निश्चित रूप से कही जा सकती है क्योंकि वर्तमान समय में यह स्पष्ट है कि किसी एक दल का प्रभुत्व भारतीय राजनीति में नहीं कहा जा सकता है। यदि पिछले दो आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी राजनीतिक दल के रूप में बहुमत प्राप्त किया है लेकिन गठबंधन की सरकार बनाने का कार्य की है क्योंकि चुनाव पूर्व का गठबंधन पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

5.5.4 दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में

अभी ऊपर के अध्ययन में हमने देखा है कि भारत में अभी दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में है क्योंकि स्वतंत्रता के पूर्व जो कांग्रेश आजादी की लड़ाई के एक मंच था वह प्रथम आम चुनाव 1952 से एक राजनीतिक दल के रूप में सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में शामिल होता है जिसमें कई दल उसके अंदर भी है और अन्य दल भी उसके विरोधी दल के रूप में भी चुनाव लड़ कर के सामने आते हैं, क्योंकि कांग्रेस के साथ जनता की भावनाएं जुड़ी हुई थी क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस का इतिहास था अपना योगदान था लेकिन धीरे-धीर स्वतंत्रता के पश्चात जनता की आकांक्षा और अपेक्षाओं में उस हद तक पूर्ति ना होना जो अपेक्षित थी, ऐसे में क्षेत्रीय स्तर पर बहुत से दलों का भाषा धर्म क्षेत्र आदि के आधार पर विकास हुआ। जिसने सर्वप्रथम राज्य के स्तर पर गठबंधन की सरकार के निर्माण का कार्य किया जिसे 1967 के राज्यों के विधानसभा के चुनाव में स्पष्ट रूप से

देखा जा सकता है आगे 1977, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 में गठबंधन की सरकार बनती हुई दिखाई देती है। जिसमें दिखाई देता है कि समय के सापेक्ष कांग्रेसका, जिसने लंबे समय तक सत्ता में प्रत्यक्ष रुप से नेतृत्व किया और कुछ समय गठबंधन के आधार पर सरकार चलाया तथा बाहर से भी समर्थन देकर कि सरकार बनाने का कार्य किया वह कांग्रेस राजनीतिक चुनाव में काफी पीछे दिखाई देती है सफलता के मामले में। परंतु नई राजनीतिक शक्ति के रूप में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का उद्भव होता है स्वतंत्रता के बाद बनने वाली राजनीतिक पार्टियों में प्रमुख थी जिसने राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास और सांस्कृतिक अस्मिता को लेकर के आगे बढ़ने का कार्य किया | जिसे जनता के समर्थन से वर्तमान समय में राजनीतिक सफलता प्राप्त हुई इस प्रकार से दिखाई देता है कि देश में जहां राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल दिखाई देते हैं जिनमें से कुछ राष्ट्रीय और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के द्वंद जीते हुए दिखाई दे रहा है तो कुछ राष्ट्रीय आकांक्षाओं और एकीकरण को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ने का कार्य कर रहे हैं। साथ ही क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए भाषा धर्म और क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों का उदय हो रहा है। समय-समय पर इन राजनीतिक दलों की एक विशेषता यह भी है कि यह व्यक्ति आधारित और परिवार आधारित राजनीतिक दल के रूप में दिखाई देते हैं इसलिए उनकी कार्यशैली में क्षेत्रीय आकांक्षाओं को संतुष्ट करने की प्रवृत्ति भी कम ही दिखाई देती है। राजनीतिक सफलता और व्यक्तिगत उपलब्धियों की प्राथमिकता अधिक दिखाई देती है। फिर भी कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र बहुत ही मजबूत स्थिति में आगे बढ़ रहा है परंतु यहां पर दलीय प्रणाली अभी विकास की और निर्माण की स्थिति में है

5.5.5 राजनीतिक अस्थिरता

क्योंकि हमने ऊपर के अध्ययन में देखा की 1967 में राज्यों के चुनाव में कई राज्य में गठबंधन की सरकार बनी तथा 1977, 1989,1991, 1996 और अभी तक 2019 तक गठबंधन की सरकार बन रही है। 1999 से अभी तक जो गठबंधन की सरकारें हैं उन्होंने काफी हद तक राष्ट्रीय स्तर की सरकार में स्थिरता प्रदान करने का कार्य किया है परंतु गठबंधन की सरकार होने के कारण कई बार मजबूत फैसले लेने से पीछे रह गये। वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में जो गठबंधन सरकार है उसकी प्रकृति में परिवर्तन है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति भिन्न है क्योंकि गठबंधन की सरकार होने के साथ उसमें एक पार्टी का स्वयं में बहुमत भी है। इसलिए मजबूत और कड़े फैसले देश के हित में लिए जाने आसान है | शायद इसीलिए राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में अनुच्छेद 370 की समाप्ति और राष्ट्रीय एकीकरण के साथ सामाजिक एकीकरण और न्याय की दिशा में 35A जैसे प्रावधानों को समाप्त कर बहुत बड़े कार्य किया गया | क्योंकि क्षेत्रीय दल जो इस गठबंधन में है वह

उस तरह की सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं है जिस प्रकार की सौदेबाजी उस समय होते थे, जब सरकार में गठबंधन सरकार में सबसे बड़ी पार्टी को बहुमत की स्थिति ना हो।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में निम्नलिखित में से कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

A. संसदीय B. अध्यक्षीय C. दोनों D. इनमें से कोई नहीं

2. भारत में राष्ट्रपति संसद के अंग है | सत्य/ असत्य

3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किस वर्ष हुई थी?

A. 1906 B. 1916

C. 1885 D. 1924

4. स्वतंत्रता के तुरंत बाद किस दल को लगातार चुनावी बढ़त प्राप्त हुई?

A. भारतीय जनसंघ B. मुस्लिम लीग

C. साम्यवादी दल D. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

5.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन में यह पाया है की भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। इसके संचालन में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्यों की इस शासन प्रणाली में निश्चित अवधि पर जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है। इस निर्वाचन की प्रक्रिया में जनता के विकल्प के रूप में राजनीतिक दल अपने नीतियों और कार्यक्रमों को लेकर आते हैं इसी के आधार पर जनता अलग अलग राजनीतिक दलों को उनके नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर पर समर्थन करते हुए मतदान करते है।

इस आधार पर भारत में निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। भारत में स्वतंत्रता के पूर्व और सवतंत्रता के बाद राजनीतिक दलों के उद्भव और उनके विकास का अध्ययन इस इकाई में किया है जिसमें यह पाया है की स्वतंत्रतापूर्व भारत में कांग्रेस एक मंच था, जिसमें मतभेदों के बाद भी एक सामान्य उद्देश के लिए सभी साथ थे। वह सामान्य उद्देश था स्वतंत्रता की प्राप्ति | परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस सत्ता प्राप्ति की प्रक्रिया में हिस्सा लेने वाला राजनीतिक दल के रूप में आगे आया है। साथ ही अन्य दलों का भी उद्भव हुआ, जिसमें जनसंघ

प्रमुख है। जिसके अपने उद्भव के समय से ही सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राष्ट्रीय एकीकरण जैसी प्राथमिकताएं रही। इस दो मुख्य राजनीतिक दलों ने देश की दलीय पद्धति के विकास और निर्माण में अपने अपने योगदान दिए हैं। यहाँ उल्लेखनीय है है अध्ययन में यह बात भी आई की स्वतंत्रता के बाद 1967 तह राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच के रूप में कार्य करने के कारण कान्ग्रेस के साथ जनसामान्य जुडा रहा | परन्तु धीरे धीरे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की प्राथमिकताओं की सिद्धी में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी जन अपेक्षित थी। अतः 1967 में पहली बार 8 राजों में गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ । यदपि बाद के अनुभवों में यह पाया गया की ये या इस प्रकार की दूसरी सरकारे अपना सफल आयोजन नहीं कर सकी। परन्तु राष्ट्रीय राजनीति में वर्तमान रूझान बदल रहे है। बहुदलीय राजनीतिक दलों के स्थान पर गठबंधन आधारित द्विध्रुवीय दलीय प्रणाली की तरफ देश बढ़ रहा है। साथ ही पिछले दो आम चुनाव में गठबंधन सरकार के संगठन और प्रकृति में बदलाव दिखाई देता है। वह यह की दोनों बार गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत भी हैं। ऐसी स्थिति राष्ट्रीय सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लते हुए सरकार दिखाई दी है। इस आधार पर कह सकते हैं की भारत में विकसित हो रही दलीय प्रणाली जिसमें गठबंधन सरकार का बनना विविधता को साकार कर रहा है, तो यह कमजोरी न बन जाए इसके निराकरण के लिए जनता ने उसी गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत देकर राष्ट्रीय और सामाजिक सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लेने की सामर्थ्य भी सरकार को दिया है | निश्चित रूप से यह विविधतायुक्त किसी राष्ट्र के लिए अनुकरणीय और स्वयं भारत के लोकतंत्र के लिए शुभता की तरफ बढ़ते हुए कदम के रूप में देखा जाना चाहिए |

5.7 शब्दावली

प्रतिनिधि शासन ऐसी शासन प्रणाली जिसमें शासन के संचालन की जिम्मेदारी जनता के प्रतिनिधियों के पास होती है।

संसद भारत में संसद राष्ट्रपति, राज्यसभा और लोकसभा से मिलकर बनती है | जिसका उल्लेख भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में किया गया है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. A. 2. सत्य 3. C. 4. D.

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु

2. राजनीति चिंतन की रूपरेख ओ.पी. गाबा

3. संपादक-राजकिशोर भारत का राजनीतिक संकट

4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद

5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका

2.एस.एम. सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

१. भारत में दलीय प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये।

इकाई-6 : दल-बदल की राजनीति

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत
6.4 भारत में दल-बदल की राजनीति
6.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक
6.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम
6.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना
6.5 सुधार सम्बन्धी सुझाव
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

वास्तव में दल-बदल विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक जटिलताओं की उपज है। जिसके अंतर्गत हम कार्य करते हैं तथा इसे एक दुष्कर सामाजिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसकी स्तुति एवं निन्दा से कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। हम किसी अन्य स्थान से सहायता नहीं मॉग सकते, या ऐसे निश्चित सिद्धान्तों व सूत्रों के संदर्भ में सोचना भी गलत होगा जो विभिन्न स्थानों या समयों पर सार्थक हुए होंगे। इस सर्व-व्यापत दल-बदल और प्रति दलबदल के सही कारण - ऐतिहासिक, संस्थागत व प्रयोजनात्मक एवं कभी- कभी इन तीनों का समिश्रण है। -सुभाष कश्यप

लोकतांत्रिक सरकार के संचालन के लिये राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। वे राजनीतिक व्यवस्था में हित-स्वरूपीकरण और हित-एकीकरण का प्रमुख कार्य करते हैं। राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के लिये प्रोत्साहित करते हैं। व्यापक मताधिकार के युग में वे जनता के निकट संबंध स्थापित करते हैं। वे चुनाव लड़ते हैं और राजनीतिक दलों के सदस्य विजयी हो कर सरकार का गठन करते हैं। सत्ता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक राजनीतिक दल व उसके सदस्य पूरी ताकत लगाते हैं। इधर के कुछ वर्षों में राजनीतिक दलों के सदस्यों में पद, सत्ता पाने के लिये अपने दलों से अलग हो कर दूसरे दलों में जा कर पद व सत्ता का लाभ लेने की प्रवृति भी प्रबल हुई है। इसे दल-बदल की राजनीति का नाम दिया गया है। सत्ता प्राप्त करने, सरकारे गठित करने के लिये राजनीतिक दल व दलों के सदस्य मौका मिलने पर इसका भरपूर लाभ ले रहे हैं।

दल-बदल आज भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख लक्षण बनता जा रहा है। इस प्रथा का आरंभ स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद के वर्षों में ही देखने को मिलता है। लेकिन चतुर्थ आम चुनाव के बाद यह प्रथा बहुत अधिक प्रचलन में आ गयी। चौथे आम चुनाव में कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो जाने के कारण बहुत से कांग्रेसी सदस्यों ने खुल्लेआम कांग्रेस को छोड़ दिया। पदों को पाने के लिये सौदेबाजी शरू कर दी और सत्ता में लाभ के पद में बने रहने के लिये दूसरे दल की सदस्ता ले ली और दूसरे दल में लाभ के कारण शामिल हो गये। हरियाणा जैसे प्रान्त में दल के सदस्यों ने इतनी जल्दी-जल्दी अपनी प्रतिष्ठाएं बदली प्रारंभ की कि वहॉ स्थिर सरकार को चलाना असंभव हो गया। दल-बदल के कारण राजनीति में आ रही अस्थिरता के चलते सभी राजनीतिक दल चिन्तित हुए और राजनीतिक दलों ने इस पर नियंत्रण लगाने के प्रयास किये। सभी दल इस मुद्दे पर एक मंच पर आये लेकिन कोई सहमति नहीं बन पायी। अंततः 1985 में संविधान में 52वां संशोधन कर दल-

बदल पर रोक लगायी गयी। यद्यपि आज दल-बदल निषेध अधिनियम लागू है लेकिन प्रकारान्तर से यह प्रथा अभी भी जारी है।

6.2 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने भारत में दलीय व्यवस्था को जाना। इस इकाई में हम भारत में दलीय व्यवस्था में के अन्तर्गत व्याप्त दल-बदल की राजनीति को समझेगें। इस इकाई के द्वारा हम जान पायेंगे कि-

1. दल बदल कानून क्या है।
2. भारत में दल-बदल की राजनीति का प्रवेश कब से हुआ।
3. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में यह एक कुरीति क्यों है।
4. भारत में दल-बदल की राजनीति पर अंकुश लगाने के लिये क्या प्रयास किये गये।
5. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था दल बदल के कारण होने वाली हानि व लाभ।
6. इस इकाई में हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि दल परिर्वतन के कारण क्या हैं।

6.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत

1967 के चतुर्थ आम निर्वाचन के अप्रत्याषित परिणामों ने भारत के राजनीतिक विकास में एक ऐतिहासिक दौर की शुरूआत की जिसे कई नामों से पुकारा गया। जैसे- अस्थिरता की राजनीति, विभ्रम की राजनीति, बचाव की राजनीति, संक्रमण की राजनीति और सामान्य रूप से इसे दल-बदल की राजनीति के नाम से जाना गया। मुख्यतः दल-बदल की अवधारणा राजनीतिक सत्ता के लिये सिद्धान्तहीन होड़ के रूप में सामने आयी। दल-बदल का सहज अर्थ अपने दायित्वों को त्यागना या उससे मुकरना है। किन्तु राजनीति में विविध स्थितियों में इसके विविध रूप होते हैं। जैसे- दल का बदलना, दल के प्रति वफादारी में बदलाव होना, जिस दल के अधीन चुनाव लड़े उस दल का त्याग, सदन के भीतर पाला बदलना, किसी दूसरे दल में शामिल होने के लिये अपने दल को छोड़ना फिर एक निर्दलीय की तरह रहना या एक नया दल या गुट बनाना, कोई दल बनाना और फिर उसी में शामिल होना आदि। यानि अपना रूख बदलते रहना ही दल-बदल है। हालांकि अभी तक दल-बदल की सार्वभौमिक और सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं बन पायी है। किन्तु सुभाष कश्यप की परिभाषा बहुत मात्रा में इस अवधारणा का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार- दलबदल का मतलब राजनीतिक प्रतीक का बदलना है, जिसमें निम्न मामलें शामिल माने जाने चाहिए जैसे- 1.एक दल के टिकट पर विधायक का चुना जाना और फिर उस विशेष दल को छोड़ कर अन्य दल

में चला जाना। 2. दल से त्याग पत्र देकर अपने को निर्दलीय घोषित कर देना। 3. एक निर्दलीय के रूप में चुनाव जीत कर किसी विशेष दल में शामिल हो जाना। यदि कोई विधायक किसी मूल मामले में दल से त्यागपत्र दिये बिना अपने दल के विपरीत मत देता हैंतो उसे किसी भी रूप में दल बदल से कम नहीं माना जाना चाहिए।

सुभाष कश्यप की इस परिभाषा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीतिक दल बदल निम्न कारणों से हो सकता है। जैसे-

- एक दल को छोड़ कर दूसरे दल में शामिल होना।
- एक दल को छोड़ना दूसरे को अपनाना और फिर अपने मूल दल में आ जाना।
- अपने दल को छोड़ कर निर्दलीय बन जाना।
- दल छोड़ देना परन्तु एक उदार नेता की तरह उसका समर्थन करते रहना।
- अन्य दल बनाने के लिये दल त्यागना।
- दल छोड़ कर दूसरे दल की स्थापना करना तथा फिर उसे मूल दल में मिला देना या किसी अन्य दल में विलय करना।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हैंकि दल बदल की प्रक्रिया उसी समय प्रारम्भ हो जाती हैं जब कोई व्यक्ति चाहे किसी भी उद्देश्य से अपनी राजनीतिक निष्ठा बदलता है।

6.4 भारत में दल-बदल की राजनीति

राजनीतिक अर्थों में दल-बदल का अर्थ किसी व्यक्ति का उस राजनीतिक दल को जिसके टिकट पर वह निर्वाचित हुआ है, छोड़कर किसी अन्य दल में सम्मिलित हो जाना है। दल विच्छेद की इस प्रक्रिया को ''फ्लोर क्रासिंग'' भी कहा जाता है। फ्लोर क्रासिंग शब्द इंग्लैंड से निकल कर आया है। इंग्लैंड में विरोधी दल व सत्ताधारी दल एक दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं और यदि उनमें से किसी दल का सदस्य एक तरफ से दूसरी तरफ जाता है तो उसे बीच के रास्ते को पार करके जाना होता है। इस प्रक्रिया को वहॉ फ्लोर क्रासिंग कहा जाता है। भारत में दल परिर्वतन या दलबदल का स्वरूप इंग्लैण्ड की तरह न होकर थोड़ा भिन्न है। भारत में दल परिर्वतन की प्रवृति केवल विरोधी दल से सत्तारूढ़ दल व सत्तारूढ़ दल से विरोधी दलों के बीच ही नहीं है, बल्कि स्वयं विरोधी दलों या सत्तापक्ष के दलों के अन्तर्गत सदस्य एक दल से दूसरे दल में मिलते व पृथक होतें रहते हैं। इससे एक

बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे परिर्वतनों का उद्देश्य सैद्धान्तिक मतभेद न हो कर राजनीतिक स्वार्थ होता है। भारत में दल परिर्वतन के मामले 1967 से मिलते हैं लेकिन 1967 के आम चुनावों के बाद दल परिर्वतन इतनी तेजी से होना शुरू हुआ कि इसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में गंभीर समस्या पैदा कर दी। चौथे आम चुनाव के बाद कांग्रेस दल के एकाधिकार का लगभग-लगभग अंत हो गया। इस समय जिन 16 राज्यों में चुनाव हुए आठ में कांग्रेस पार्टी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। ये राज्य बिहार, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश व पश्चिम बंगाल थे। इनमें से छः राज्यों में विरोधी दलों ने न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त हो कर सरकार का गठन किया। कुछ राज्यों में कांग्रेस को सीमान्त बहुमत मिला और येन केन प्रकारेण कांग्रेस ने मंत्रिमंडल का निर्माण किया। ऐसे राज्यों में विरोधी दलों ने सामूहिक प्रयत्न कर कांग्रेसी सरकारों को अपदस्थ करने का अभियान चलाया। चुनावों के तुरन्त बाद उत्तर-प्रदेश, हरियाणा व मध्यप्रदेश में कांग्रेस दल न मंत्रीमण्डल का निर्माण किया। अगले कुछ महिनों बाद कांग्रेस के भीतर तोड़-फोड़ के फलस्वरूप कांग्रेस के मंत्रीमण्डल के स्थान पर विरोधी दलों की मिश्रित सरकारों का गठन हुआ। प्रारम्भिक तौर पर सभी विरोधी दल समझौते के तहत सरकार बनाने को तैयार हुए, इसके पीछे उनका सीधा उद्देश्य यह था कि कांग्रेस को किसी भी हाल में सरकार बनाने का मौका न दिया जाय। और जिन राज्यों में कांग्रेस की सरकारों का निर्माण हो गया उन्हें गिराया जाये। इन सब उद्देष्यों की पूर्ती के लिये दलबदल को साधन के रूप में अपनाया गया। जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी स्थिति आयी जब देश के 17 राज्यों में से 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी-मिश्रित सरकारों का निर्माण हुआ। यह भारतीय राजनीति का सबसे एतिहासिक परिर्वतन था। दूसरी ओर ये भी कहा जा सकता है कि भारत में दल बदल की प्रक्रिया का उद्भव भारत की विशाल राजनीतिक पार्टी कांग्रेस के पतन से ही तीव्र हुआ। उसके उत्थान व पतन से राजनीतिक दल बदल के बाजार में उतार चढ़ाव आते रहे। भारी संख्या में राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक प्रतिबद्धता के बदलते रहने के कारण देश की राजनीति में अस्थिरता आने लगी। विषेशज्ञों ने इसके कई कारण बताये-

1.भारत में राजनीतिक दलों, विषेशकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास व उसकी प्रकृति।

2.सभी दलों में वृद्ध लोगों का नेतृत्व ।

3.राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण का अभाव।

4.दलों की सदस्यता, उनके लक्ष्यों व गतिविधियों में जन-भागीदारी का अभाव तथा चुने हुए प्रतिनिधियों की दलबदल संबंधी गतिविधियों के प्रति जन उपेक्षा।

5.दलों के अन्तर्कलह व उनमें गुटबंदी।

6.राज्य विधान सभाओं में अस्थायी या कम बहुमत वाली सरकारें तथा निर्दलीय सदस्यों की भूमिका।

7.साधारण विधायक व दल के स्वामी के मध्य व्यक्तित्व का टकराव।

8.पद,धन,स्तर आदि का लालच या उसका अभाव।

9.मंत्री व विधायक के वेतन, भत्ते, स्तर व अन्य उपलब्धियों में भारी अन्तर।

10.राजनीतिक दलों में शक्तिशाली दबाव समूहों व धड़ों की भूमिका।

11.1967-69 के मध्य कांग्रेस दल द्वारा सत्ता में अन्यों की भागीदारी न बनाने की प्रवृति।

12. भारतीय राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी व अज्ञानता से भरे देश में झूठे विचारों व राजनीतिक वास्तविकताओं के बीच बड़ी खाई।

इन सभी कारणों से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि राजनीतिक दलबदल में व्यक्तिगत लाभ की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। राजनीतिक प्रतिबद्धता बदलने का प्रमुख कारण केवल स्वार्थ है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। अतः दलबदल करने वाला व्यक्ति राजनीतिक अपराधी है जिसे जनता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं है। 1971 में गवर्नरों की कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा- बहुत संख्या में दल बदल होने का कारण यह है कि इससे पुरस्कारो, पदों या राजकीय पक्षपात के आश्वासन मिलते हैं। यही वह परिस्थिति है जो अनुशासनहीनता व राजनीतिक भ्रष्टाचार को प्रत्यक्षतः उकसाती है।

6.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक

चतुर्थ आम चुनावों के बाद की घटनाओं के संदर्भ में, भारत में राजनीतिक दल बदल की समस्या ने गंभीर रूप ग्रहण कर लिया। इस चुनाव के बाद कुछ ही महीनों में 438 विधायकों ने अपना दल बदला। 210 दल-बदलूओं में से 116 को मंत्रीमण्डल में स्थान मिला। 1967 से 1973 के बीच 2,700 विधायकों ने दलबदल कर 45 राज्य सरकारों को गिराया। उस समय देश के 60 प्रतिशत से अधिक विधायकों ने दलबदल में भाग लिया। जिस कारण जून 1967 में शिमला में हुए सचेतक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें कहा गया कि- सम्मेलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त

दलबदल की घटनाओं व उनसे उत्पन्न स्थिति पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करता है। सम्मेलन इसे नैतिक दृष्टि से अनुचित समझता हैं तथा इस अनैतिक कार्य को दुबारा चुनाव लड़कर दलबदलुओं ने भी मान्यता दी है।

सभी दलों से यह अपेक्षा की गयी कि वे इसकी गंभीरता को समझे व एक सर्वसम्मत संहिता बनायें जो सभी को स्वीकार्य हो एवं नैतिक रूप से उन्हें वाध्य करे। तदोपरान्त 8 दिसम्बर 1967 को लोक सभा में एक उच्च स्तरीय समिति बनाने का प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि व संवैधानिक विषेशज्ञ रखे गये जो दलबदल पर विचार कर संबंधित सुधारों के सुझाव देंगे। इस प्रस्ताव के अनुसार तत्कालीन गृह मंत्री यशवंत राव च्वहाण की अध्यक्षता में प्रसिद्ध न्यायविदों, राजनेताओं व सार्वजनिक नेताओं सहित एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के पास सबसे मुस्किल कार्य दलबदल की सर्वसम्मत परिभाषा करना था। बड़ी मशक्कत के बाद समिति के एक सदस्य जय प्रकाश नारायण द्वारा दी गयी परिभाषा पर सहमति बनी। जिसमें कहा गया था कि- यदि संसद या राज्य विधान मण्डलों का कोई निर्वाचित सदस्य जिसे किसी राजनीतिक दल का चुनाव चिन्ह मिलता है, चुने जाने के बाद अपना दल स्वेच्छा से त्याग करता है, या उससे संबंध तोड़ता है तो उसे दल बदल माना जायेगा बशर्ते उसका यह कार्य सम्बन्धित दल के किसी निर्णय का परिणाम न हो।

ये बात पहले ही कही जा चुकी हैंकि ऊपर दी गयी परिभाषा बड़ी मशक्कत के बाद सामने आयी और सभी द्वारा स्वीकारी गयी। लेकिन धीरे-धीरे इस परिभाषा को लेकर भी गतिरोध बढ़ने लगा। ये परिभाषा भी सभी को मान्य न हो सकी क्योंकि-

प्रथम-इसमें केवल निर्वाचित विधायकों से सम्बन्धित राजनीतिक दल बदल को लिया गया था। राजनीतिक दल के सदस्य जो संसद या राज्यों के विधान मण्डलों में नहीं हैं इस परिभाषा के दायरे में नहीं आ सके। द्वितीय-इस परिभाषा में ऐसा विधायक का दल बदल नहीं माना गया जिसे उसके दल ने किसी कारण निष्कासित कर दिया हो व तदोपरान्त उसने किसी अन्य दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इससे दल बदल की आकांक्षा करने वाला सदस्य जान बूझ कर अपने दल का अनुषासन तोड़ सकता था जिससे वह दल से निकाला जाये व उसका वांछित लक्ष्य पूरा हो सके। तृतीय- इस परिभाषा में ऐसी स्थिति में प्रकाश नहीं डाला गया जिसमें पूरा दल या गुट किसी अन्य दल या गुट में विलय कर ले। चतुर्थ-इसमें वह विधायक भी शामिल नहीं किया गया जो जानबूझ कर संसद में अनुपस्थित रह कर मतदान में भाग नहीं लेता। पंचम-इसमें उन निर्दलीय व्यक्तियों के बारे में कुछ नहीं कहा गया जो राजनीतिक हवा के अनुसार अपना रूख बदल लेते हैं। अतः यह कहा जा सकता था

कि इस सरकारी व्याख्या में इतनी खामिया थीं कि इससे वांछित विधायक का उद्देश्यकी समाप्त हो गया।

कुछ संशोधनों सहित सरकार ने च्वहाण समिति के सुझावों को क्रियान्वित करने के लिये 16 मई 1973 को लोकसभा में राजनीतिक दलबदल विरोधी विधेयक प्रस्तावित किया। इसमें प्रावधान किया गया कि विधायक को संसद के किसी सदन या विधान सभा व परिषद के सदस्य बने रहने के अयोग्य घोषित किया जा सकेगा यदि वह-

- दल के उम्मीदवार के रूप में किसी सदन का सदस्य चुने जाने के बाद या उस दल के सदस्य होने के बाद उस दल की सदस्यता त्याग देता है।
- यदि कोई सदस्य पूर्व अनुमति के बिना सदन से अनुपस्थित रहता हैंया अपने राजनीतिक दल व उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेषों के विरूद्ध मत देता है।

विधेयक में आगे यह भी कहा गया था कि उपरोक्त शर्तें वहॉ लागू होंगी जहॉ विधेयक को दल में फूट पड़ जाने के कारण दल की सदस्यता से त्याग पत्र देना पड़े। उसमें यह भी प्रावधान किया गया था कि ऐसा कोई विवाद जो सम्बन्धित दल या व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा अंतिम रूप से राज्य के मामले में राज्यपाल तथा केन्द्र के मामले में राष्ट्रपति द्वारा निर्णित होगा।

इस दलबदल विरोधी विधेयक में कई कमियॉ थीं। प्रथम- यह विधेयक दलबदल की स्पष्ट परिभाषा करने में असफल था। द्वितीय- इस विधेयक द्वारा सम्बन्धित दल को राज्य के अध्यक्ष से प्रार्थना करने का अधिकार दिया गया। पर यदि कोई पीड़ित पक्ष राष्ट्रपति या राज्यपाल जिसका सम्बन्ध हो के पास न जाये तो क्या वह राजनीतिक दलबदल नहीं होगा? तृतीय- फूट पड़ जाने की परिस्थिति में दलबदल की सम्भावना को ही दूर कर दिया गया गया। चतुर्थ- केन्द्र पर राष्ट्रपति व राज्यों में राज्यपालों को इस सम्बन्ध में विस्तृत अधिकार दे कर उन्हें दलीय राजनीति में अनुचित रूप से घसीटा गया। पंचम- इस विधेयक से सदन के सदस्य की अपने मतदान के संदर्भ में स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया गया और इस तरह संविधान के तृतीय भाग में वर्णित मौलिक अधिकारों का ही उलंघन किया गया। कुल मिला कर इस विधेयक का भी विरोध किया गया।

अपने चुनाव घोषणापत्र में किये गये महत्वपूर्ण वायदों को क्रियान्वित करने के लिये जनता सरकार ने अप्रैल 1978 में एक विधेयक रखा जिसमें संविधान के अनुच्छेद 102 व 109 को परिवर्तित कर संसद व राज्य व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों की योग्यताओं को पुनर्निर्धारित किया गया। इसमें कहा

गया कि-किसी व्यक्ति को संसद या किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्य बने रहने के अयोग्य माना जायेगा यदि (1) वह स्वेच्छा से अपनी मूल राजनीतिक दल की सदस्यता को त्याग दे। (2) वह सदन में अपने दल के आदेषों या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेषों की उपेक्षा पर उसकी पूर्व अनुमति के बिना दल के विरूद्ध मतदान करे। संसद के किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्यता के लिये निर्वाचित सदस्य का वही दल माना जायेगा जिसके चुनाव चिन्ह पर वह जीत कर आया हैंया जीतने के बाद उसने सबसे पहले किसी दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इस सम्बन्ध पर उठे किसी विवाद पर पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा। इस निर्णय को न्यायपालिका में नहीं ले जाया जा सकता हैंयद्यपि पीठासीन अधिकारी को अपने निर्णय देने के पूर्व जॉच करने का पूर्ण अधिकार होगा।

दुर्भाग्यवश जनता सरकार के सभी प्रयास व्यर्थ रहे क्योंकि 48वें संविधान संशोधन विधेयक को 28 अप्रैल 1978 को लोकसभा में प्रस्तुत करते ही जनता दल के कुछ वरिष्ठ सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया। अतः इस विधेयक को वापस ले लिया गया।

6.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम

जून 1975 में आपातकाल लागू होने के बाद राजनीतिक दलबदल की बाढ़ सी आ गयी। अपने राजनीतिक संगठनों में अपना कोई भविष्य न देख कर भारतीय लोकदल, जनसंघ, संगठन कांग्रेस, समाजवादियों तथा अन्य क्षेत्रीय दलों के विधायकों में शामिल होने की होड़ लग गयी । किन्तु फरवरी 1977 में कांग्रेस से भारी निकासी की शुरूआत हुयी जब जगजीवन राम के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक कांग्रेस की स्थापना हुयी । श्रीमती इन्दिरा गॉधी के अधिनायकवादी व स्वेच्छाचारी वर्ताव से क्षुब्ध होकर कई प्रमुख कांग्रेसी नेताओं(हेमवतीनंदन बहुगुणा, के.आर.गणेश व नंदिनी सत्यपथी आदि) ने कांग्रेस छोड़कर कांग्रेस फार डेमोक्रेसी में शामिल होने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप जगजीवन राम का यह व्यक्तिगत संगठन एक शक्ति के रूप में उभरा। इस दल की आलोचकों द्वारा तीखी टिप्पणी की गयी। इसे 'दलबदलुओं की कांग्रेस' कहने लगे। जनता पार्टी के पतन के साथ ही इस स्वार्थपरक व अवसरवादी दल का पतन हो गया। हरियाणा में 1982 में हरभजनलाल द्वारा सामूहिक दल बदल, 1984 में गुलशाह द्वारा कष्मीर में दलबदल के बाद सरकार का गठन, और 1984 में ही आन्ध्र प्रदेश में भास्कर राव द्वारा दलबदल के बाद सरकार का गठन भारतीय राजनीति के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ।

यद्यपि पूर्व के सभी प्रयास असफल रहे, राजीव गॉधी की सरकार ने आठवीं लोकसभा के पहले ही सत्र में विपक्षी दलों का सहयोग लेकर दलबदल पर अंकुश लगाने का सराहनीय प्रयास किया। संसद के उद्घाटन भाषण में महामहीम राष्ट्रपति ने इसका कुछ संकेत दे दिया था। जनवरी 1985 में दोनों सदनों से पारित हो कर यह चर्चित विधेयक 52वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में सामने आया। इसने भारतीय संविधान में 10वीं अधिसूची बढ़ायी। इसमें निम्न प्रावधान हैं -

1.निम्न परिस्थितियों में संसद या राज्य विधान मण्डल के सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जायेगी।

क-यदि वह स्वेच्छा से अपने दल से त्याग पत्र दे दे।

ख-यदि वह अपने दल या उसके अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके किसी निर्देश के प्रतिकूल मतदान करें या मतदान के समय अनुपस्थित रहे। परन्तु यदि 15 दिन के अन्दर उसका दल उसे इस उलंघन के लिये क्षमा कर दे तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ग-यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य 6 महिने के भीतर किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाये तो उसे दल बदल का अपराध नहीं माना जायेगा।

2.किसी राजनीतिक दल के विघटन पर विधायक की सदस्यता समाप्त नहीं होगी यदि मूल दल के एक तिहाई सांसद विधायक वह दल छोड़ दें।

3.किसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दलबदल माना नहीं जायेगा यदि किसी दल के कम से कम दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में मिल जाएं।

4.दल बदल के किसी प्रश्न पर अंतिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा। किसी न्यायालय को उसकी वैधता जॉचने का अधिकार नहीं होगा। इसे पंजाब व हरियाणा न्यायालय ने 1986 में रद्द कर दिया।

5.इस विधेयक को कार्यान्वित करने के लिये सदन के अध्यक्ष को नियम व निर्देश बनाने का अधिकार होगा।

इस दलबदल विरोधी कानून की हर जगह सराहना हुई। दोंनो सदनों के सदस्यों ने इस 'ऐतिहासिक घटना' बताया। इससे देश के राजनीतिक जीवन में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तत्कालीन केन्द्रीय कानून मंत्री अषोक सेन के अनुसार- संसद के दोनों सदनों के द्वारा सर्वसम्मती से इस विधेयक को

स्वीकार करना भारतीय प्रजातंत्र की परिपक्वता व स्थिरता का प्रमाण है। इस अधिनियम के अनुसरण में संसद के पीठासीन अधिकारियों ने निम्न नियम बनाये हैं-

1.कोई सदस्य इस कानून के अर्न्तगत अयोग्य हैंया नहीं, इसका विचार संसद के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत याचिका के बाद ही किया जायेगा।

2.सदस्य या सदस्यों द्वारा प्रस्तुत ऐसी याचिका सदन के मुख्य सचिव को सम्बोधित होनी चाहिए तथा उससे सम्बन्धित साक्ष्य भी सन्निहित होने चाहिए।

3.पीठासीन अधिकारी याचिका स्वीकार करने के बाद उसे सम्बन्धित दल के नेता के पास अपनी टिप्पणी देने के लिये भेजेगा।

4.यदि पीठासीन अधिकारी याचिका को किसी समिति के सुपुर्द करता हैंतो प्रार्थी को उसकी विधिवत सूचना देगा व उसकी सार्वजनिक सूचना प्रकाषित करवायेगा।

5.पीठासीन अधिकारी दल के नेता व सम्बन्धित सदस्य के विचार जानने के बाद स्वयं निर्णय देगा या उसे सदन के विषेषाधिकार समिति को जॉच कराने के लिये सुपुई कर सकता है।

6.सम्बन्धित सांसद को अपनी सफाई देने के लिये उचित अवसर दिये बिना पीठासीन अधिकारी अन्तिम निर्णय नहीं लेगा।

7.याचिका पर विचार करने के तदोपरान्त, पीठासीन अधिकारी अपने लिखित आदेश से या तो याचिका खारिज कर देगा या सम्बन्धित सदस्य को अयोग्य घोषित कर देगा।

8.अयोग्यता सम्बन्धी निर्णय तुरन्त सदन को प्रेषित किया जायेगा। इसे सरकारी गजट में प्रकाषित किया जायेगा तथा इसकी प्रति सदन के महासचिव, चुनाव आयोग व भारत सरकार के गृह सचिव को प्रेषित की जायेगी।

9.प्रत्येक सदस्य को सदन में अपना आसन ग्रहण करने से पूर्व तीस दिन के भीतर सदन के महासचिव को अपनी निर्वाचन घोषणा व दलीय प्रतिबद्धता की सूचना देनी होगी।

10.संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारी भी इन नियमों से बाधित होंगे।

6.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना

- यह सही हैंकि दलबदल विरोधी अधिनियम हमारे राजनीतिक जीवन को स्वच्छ रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। परन्तु आलोचकों ने इसकी निम्न आधार पर आलोचना की है।
- इस अधिनियम से विधायक की अर्न्तााआत्मा की स्वतंत्रता समाप्त होती है। असहमति रखने के अधिकार का हनन होता है। इससे दलीय घोषणा पत्र या संविधान की भावना के विपरीत रखे उपायों पर भी विधायक को मत देने के लिये विवश किया जा सकता है।
- हमारे संवैधानिक कानून में पहली बार राजनीतिक दलों का उल्लेख किया गया है। तथा दलों को अपने विधायकों को निष्कासित करने या सदन की सदस्यता समाप्त करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। जो घनघोर अन्याय हो सकता है।
- यदि दलबदल अनुचित हैं तो वह हर हालत में अनुचित है, किसी दल के विभाजन से उत्पन्न भारी संख्या में दलबदल कैसे उचित माना जा सकता है।
- यह राज्यों की स्वायत्ता नष्ट करने के बारे में केन्द्रीय प्रयास है। इसमें सन्देह हो सकता हैंकि क्या संसद किसी राज्य विधान सभा के सदस्य के अधिकारों व विषेषाधिकारों को नियमित करने में सक्षम है।
- किसी व्यक्ति को दलबदलू के वर्ग में लाना और फिर उसके निष्कासन का मामला न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में न रखना, घोर आपत्तिजनक व संविधान की व्याख्या करने के अधिकारी की अवमानना की भांति है।

6.5 सुधार सम्बन्धी सुझाव

1967 से 1985 के बीच तक के राजनीतिक दलबदल के आंकड़ो से स्पष्ट होता हैंकि इस राजनीतिक अपराध ने भीशण रूप ले लिया है। आज कठोर अधिनियमों के बाद भी दलबदल की प्रवृति में किसी प्रकार की कोई कमी देखने में नहीं आयी है। आज भी दलबदल किसी न किसी रूप में हमें देखने को मिल रहा है। दलबदल की इस स्थिति के कारण हमारी संवैधानिक व्यवस्था के जीवन मरण काप्रश्नउपस्थित हो गया है। देश के विशिष्ट राजनेताओं, वकीलों, षिक्षाविदों, राजनीतिक शास्त्रियों आदि ने भारतीय राजनीति में फैली इस बीमारी के उपचार हेतु निम्न सुझाव दिये। विद्वानों द्वारा दिये गये सुझावों में -प्रत्यावर्तन की व्यवस्था, अध्यक्षात्मक प्रणाली को ग्रहण करना, दलहीन प्रजातंत्र की व्यवस्था, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली या सूची प्रणाली के माध्यम

से चुनाव का होना, देश में प्रजातांत्रिक परम्पराओं के स्वस्थ्य विकास की योजना आदि को प्रमुख उपचार के रूप में महत्व दिया गया।

यदि इन सुझावों को मान लें तो कई राजनीतिक विद्वान ये मानते हैं कि कई अन्य परेषानियों का सामना करना पड़ सकता है। जैसे- विधेयक को वापस बुलाने या प्रत्यावर्तन की व्यवस्था से चुनाव की राजनीति में धूर्त चालों की बाढ़ आने की सम्भावना बढ़ जायेगी। दूसरी तरफ जनता भी इस नयी प्रजातांत्रिक पद्धति से ऊब जायेगी। दलहीन प्रजातंत्र केवल बौद्धिक विचार की वस्तु है। संसदात्मक शासन के स्थान पर अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था को अपनाने से अनुत्तरदायी व स्वेच्छाचारी कार्यपालिका की स्थापना होगी जो उपचार से अधिक बड़ा रोग सिद्ध होगा। अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अपने दोष हैं जिनका अनुभव फ्रांस व इटली वालों ने किये हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए एक ही व्यवहारिक सुझाव हो सकता हैंऔर वह हैंराजनीतिक लाभ रोकने हेतु किसी संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था के साथ-साथ स्वच्छ प्रजातांत्रिक परम्पराओं का विकास। मंत्रिपरिषद के आकार पर प्रतिबंध, मंत्री की अवधि का निर्धारण तथा राजनीतिक दलबदलुओं की सदन की सदस्यता से समाप्ति ऐसे उपाय हैं जिनसे इस दशा में कुछ प्रतिरोध लगाया जा सकता है। परन्तु स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं के उदय व विकास के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। अतः जनता को स्वयं अपने सांसदों व विधायकों पर कड़ी निगाह रखनी होगी। विधायी व नैतिक विकल्पों का सुखद संयोजन ही इसका एक मात्र प्रभावी उपचार हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारतीय राजनीति में किस दौर की शुरुआत मानी जाती है?

A. स्थिरता की राजनीति B. एकदलीय प्रभुत्व की राजनीति

C. दल-बदल की राजनीति D. समाजवादी राजनीति

2. दलबदल विरोधी कानून किस संविधान संशोधन के अंतर्गत लाया गया?

A. 44वां संविधान संशोधन B. 48वां संविधान संशोधन

C. 52वां संविधान संशोधन D. 61वां संविधान संशोधन

3. 1985 के दलबदल विरोधी अधिनियम में किसे अंतिम निर्णय का अधिकार दिया गया है?

A. सदन के अध्यक्ष / सभापति B. राज्यपाल

C. प्रधानमंत्री D. राष्ट्रपति

4. चव्हाण समिति का गठन किस उद्देश्य से किया गया था?

A. चुनाव सुधार हेतु B. संविधान संशोधन हेतु

C. दलबदल की परिभाषा व सुधार सुझाव देने हेतु D. राज्य पुनर्गठन हेतु

6.6 सारांश

दलबदल अधिनियम 1985 के पारित होने के समय यह आषा की गयी थी कि यह भारतीय राजनीति की एक गंभीर बीमारी की अचूक दवा साबित होगी, लकिन बिगत 15 वर्षो के अनुभव दूसरी ही तस्वीर प्रस्तुत कर रहे हैं। अब इसकी अनेक खामिया नजर आने लगी हैं। इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संसद या विधायक छुटपुट ढंग से दलबदल किया करते थे लेकिन इसके पारित होने के बाद सामुहिम रूप से बड़े पैमाने पर दल बदल होने लगा है। और छोटे-छोटे नये राजनीतिक दलों का तेजी से निर्माण होने लगा है। उदाहरण के लिये 90 के दशक में अनेक छोटे राजनीतिक दलों या गुटों का निर्माण हुआ है। जैसे- लोकतांत्रिक कांग्रेस, जनता दल(अ), जनतादल(ज), जनतांत्रिक बसपा, लोकशक्ति, लोक जनशक्ति इत्यादि।

विगत 15 वर्षों में यह भी देखने को आया हैंकि अनेक सांसदों एवं विधायकों ने इस अधिनियम के प्रावधानों का उलंघन करते हुए दलबदल किया हैंलेकिन आज तक किसी की भी सदस्ता समाप्त नहीं हुयी। उदाहरण के लिये 1991 में अजीत सिंह के नेतृत्व में जनता दल के 10 सांसदों ने जनता दल से अलग होकर लोक सभा अध्यक्ष से नये राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान करने का प्रतिवेदन दिया और अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने उन्हें एक नये गुट के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। जबकि उनकी संख्या पैतृक राजनीतिक दल की सदस्य संख्या से एक तिहाई कम थीं। उत्तर-प्रदेश में कल्याण सिंह के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने अपनी सरकार को बचाये रखने के लिये अनेक राजनीतिक दलों से बड़े पैमाने पर दल बदल कराये और दलबदलुओं को मंत्री पद से नवाजा गया।

इस प्रकार स्पष्ट होता हैंकि दलबदल अधिनियम 1985 दलबदल को रोकने में असफल सिद्ध हो रहा है। अतः यह समीचीन होगा कि दलबदल अधिनियम में रहते आवश्यकसंशोधन कर इसे कारगर बनाया जाये, अन्यथा आने वाले दिनों में यह खतरनाक रूप धारण कर लेगा, और लोकतांत्रिक व्यवस्था अलोकतांत्रिकता की ओर मुड़ जायेगी। अंत में यह उल्लेखनीय हैंकि संविधान का 91वॉ संशोधन अधिनियम 2003 दलबदल पर कठोर नियमों को प्रतिस्थापित करता है।

6.7 शब्दावली

1. दलबदल (Defection): किसी निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा अपने मूल राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़कर अन्य दल में शामिल होना या राजनीतिक निष्ठा बदलना।

2. फ्लोर क्रासिंग (Floor Crossing): संसद या विधान सभा में एक दल के सदस्य का दूसरे दल की ओर जाना; यह शब्द इंग्लैंड से लिया गया है।

3. राजनीतिक निष्ठा: किसी व्यक्ति की किसी विशेष राजनीतिक दल, विचारधारा या सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्धता।

4. संयुक्त सरकार (Coalition Government):जब कोई एक दल पूर्ण बहुमत प्राप्त न कर सके और कई दल मिलकर सरकार का गठन करें।

6.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1– C, 2– C, 3– A, 4– C

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डिफेक्षन

2. जे.सी. जौहरी - रिफलैक्षन आफ इंडियन पालिटिक्स

3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. समाचार पत्र व समाचार पत्रिकाऐं - इंडिया टुडे, आउटलुक, टाईम्स आफ इण्डिया, हिन्दुस्तान, द हिन्दु।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में दल बदल के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये?
2. राजनीतिक दलबदल से आप क्या समझतें हैं ?
3. 'दलबदल भारतीय राजनीति में एक अभिशाप है' इस कथन पर अपने विचार लिखिये?
4. 1973 व 1978 के दलबदल अधिनियमों की असफलता पर अपने विचार दें?

5. 1985 के दलबदल अधिनियम के बाद से क्या आज की भारतीय राजनीति में कुछ सुधार आया है? अपना कथन दीजिये?

इकाई 7 : मिश्रित सरकारें- गठन, कार्यचालन और संभावनाएँ

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 गठबंधन सरकार के बनने की परिस्थितियाँ
7.4 भारत में गठबंधन करने में मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं
7.5 गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली
7.6 परिवार की आकांक्षा और दलबदल आधारित गठबंधन
7.7 मिश्रित या गठबंधन सरकारों के असफलता के कारण
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

विगत तीन दशकों से भारत में गठबंधन सरकार (मिश्रित सरकार) ही बन रही है। इसके पूर्व 1984 में कांग्रेस को बहुमत मिला। भारत में सर्वप्रथम 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार बनी | इसके पश्चात 1989 बनी है। 1989 से अभी तक गठबंधन की सरकार बन रही है इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि गठबंधन सरकार होती क्या है? इन का गठन किस प्रकार से होता है ? यह किस प्रकार से कार्य करती हैं ? तथा देश के आने वाले समय में गठबंधन की सरकार से क्या संभावनाएं हैं? इस बात का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । परंतु इसका अध्ययन करने के पूर्व हमें भारत में लागू की गई शासन प्रणाली के बारे में संक्षेप में समझना होगा जैसा कि पूर्व की कई इकाइयों में हमने देखा है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है।

संसदीय शासन प्रणाली अपनाने के कारण ब्रिटेन की संसदीय परंपरा का अनुसरण करते हुए, आम चुनाव के बाद निम्न सदन में अर्थात लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपति आमंत्रित करते हैं। प्रधानमंत्री की नियुक्त करते हैं । प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करते हैं। इस प्रकार से सरकार का गठन होता है लेकिन यह जितना आसान दिखाई दे रहा है सामान्यतया जब किसी राजनीतिक दल को बहुमत न प्राप्त हो तब सरकार के गठन को लेकर के अधिक चिंता होती है तब ऐसी परिस्थिति में विभिन्न राजनीतिक दल संगठित होकर के सरकार बनाने का दावा राष्ट्रपति के पास पेश करते हैं। राष्ट्रपति को यह एहसास हो जाए कि यह बहुमत सिद्ध करने और सरकार चलाने में सफल होंगे तो विभिन्न राजनीतिक दलों में जिसको भी अपना नेता मानते हैं उसे प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं । यद्यपि इस प्रकार के गठबंधन की परिस्थितियां भिन्न भिन्न हो सकती हैं। यह हो सकता है कि कोई दल इस प्रकार के गठबंधन में शामिल होने के लिए सरकार में शामिल हो अर्थात मंत्री पद को भी प्राप्त करें परंतु यह भी हो सकता है कि वह दल सरकार को बाहर समर्थन करें ताकि उसे बहुमत प्राप्त हो सके । जबकि सरकार का हिस्सा ना बने अर्थात मंत्री पद को धारण न करें इस प्रकार से स्वतंत्रता के बाद दोनों परिस्थिति वाली सरकारें भारत में पाई गई।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. गठबंधन सरकार के अर्थ को जान सकेंगे

2. इसके गठन की परिस्थितियों का अध्ययन कर सकेंगे

3. गठबंधन सरकार के कार्यचालन के अनुभव कैसा है यह जान सकेंगे

4. भारत में गठबंधन सरकार की उभरती प्रवृत्ति के बारे में जान सकेंगे

7.3 गठबंधन सरकार के बनने की परिस्थितियाँ

यहां यह उल्लेखनीय है कि जहां पर बहुदलीय व्यवस्था होती है वहां पर गठबंधन सरकार बनने की संभावना अधिक होती है, क्योंकि किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त करने की स्थिति नहीं होती जबकि जहां पर मजबूत द्विदलीय व्यवस्था होती है वहां पर किसी न किसी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त हो जाता है और वह आसानी से सरकार का गठन करते हैं।

जैसे ब्रिटेन में कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो वहां द्विदलीय व्यवस्था होने के कारण गठबंधन की सरकार अपवाद के रूप में ही दिखाई देती है। वहां पर सामान्यतया एक दल को बहुमत प्राप्त हो जाता है, रहा है और वह आसानी से सरकार बनाते है। लेकिन यह स्थिति फ्रांस के संदर्भ में नहीं कही जा सकती क्योंकि वहां पर पूर्व में अर्थात पंचम गणतंत्र के लागू होने के पूर्व मिश्रित सरकारों के गठन और उनके विघटन का लंबा सिलसिला चला है इसीलिए फ्रांस को मिश्रित सरकारों का घर भी कहा जाता है।

अब यहां सवाल उठता है कि वह कौन से कारक है जिनकी वजह से भारत में गठबंधन सरकारों का दौर प्रारंभ होता है और वर्तमान समय तक दिखाई दे रहा है क्योंकि स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान कांग्रेस ऐसा मंच था जिसके साथ जुड़कर सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोगों ने संघर्ष में हिस्सा लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति का मंच था कांग्रेस इसलिए भारत के जनसामान्य कांग्रेस से एक भावनात्मक लगाव रहा परंतु स्वतंत्रता के बाद यह कांग्रेस देश की आजादी का मंच होने के स्थान पर देश में सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में शामिल होने वाले राजनीतिक दल के रूप में सामने आता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लोगों का कांग्रेस के प्रति एक अलग लगाव था इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय बाद तक कांग्रेस को एकतरफा बहुमत आम चुनाव में, राज्य के चुनाव में भी प्राप्त होता रहा है। परंतु जैसा कि हम सभी जानते भी हैं भारत में धर्म भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, खान पान, रहन सहन, भौगोलिक संरचना में भिन्नता और इस संरचना में भिन्नता के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता और इनके साथ आवश्यकता जनित भिन्नता अर्थात हितों में भिन्नता और इस भिन्नता के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में छोटे-छोटे दलों का उदय हुआ |

देश में अभी तक राजनीतिक रूप से एक छत्र सफलता प्राप्त करने वाली कांग्रेस के सामने देश में पहली बार 1967 में चुनौती सामने आई क्योंकि 8 राज्यों की विधानसभाओं में किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इसका तात्पर्य है कांग्रेस को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ ऐसा पहली बार हुआ जिसमें 8 राज्यों में विभिन्न दलों के आपस में मिलने से सरकार का गठन होगा जिसमें कांग्रेसी नहीं थी अर्थात देश में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ और वह भी 8 राज्यों में । यह गैर कांग्रेसी सरकार बहुमत किसी एक दल को बहुमत प्राप्त की सरकार ना हो करके कई दलों से मिलकर के गठित होने वाली सरकार थी जिसे गठबंधन की सरकार या मिश्रित सरकार कहा जा सकता है। यह भी बहुत ही महत्वपूर्ण और विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह जो गठबंधन हुआ या गठबंधन किसी सिद्धांतों मूल्यों आदशों या उस प्रांत विशेष की आकांक्षाओं की तृप्ति के लिए न होकर के सत्ता प्राप्त करने के लिए होता हुआ अधिक दिखाई देता है। इसलिए इस प्रकार से होने वाले गठबंधन में बहुत तेजी से बिखराव भी दिखाई देता है। जैसा कि बाद के दिनों में भी यह दिखाई देता है क्यों क्योंकि विरोधी विचार और सिद्धांत के राजनीतिक दल भी मिलकर के सरकार का गठन करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसी परिस्थिति में यहां विचारों और सिद्धांतों के अनुरूप राजनीतिक दलों के कार्य करने का विषय प्राथमिक में रह करके, सत्ता प्राप्ति प्राथमिक है। इस तरह की परिस्थिति में घटित होने वाली सरकार अस्थिर रही है।

7.4 भारत में गठबंधन करने में मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं

भारत में उस समय जो गठबंधन दिखाई देते हैं और उसके बाद के समय में भी जो दिखाई देते हैं उसमें एक बात बड़ी साफ दिखाई देती है सरकार बनाने के क्रम में अपने सिद्धांत एवं मत भिन्नता को बहुत महत्व नहीं देते हैं। सरकार बनाने को प्राथमिकता देते हैं इसकी व्याख्या इस तरह से की जा सकती है.

एक तो यह की जन सामान्य के हित में अपने सिद्धांत एक मूल्यों को किनारे रखते हुए सरकार के गठन और उसको चलाने पर सहमति बनाकर आगे बढ़ने का कार्य करते हैं। दूसरा मत इस पर यह है की सत्ता प्राप्ति अगर हो रही है तो कोई सिद्धांत और वसूल मायने नहीं रखते ।

उसमें राज्यों में अर्थात 1967 में राज्य में जो सरकारें बनी उन के गठन को देख कर के भारत में मिश्रित सरकार के अर्थ और गठबंधन सरकार की प्रकृति को आसानी से समझा जा सकता है।

पश्चिम बंगाल में जो सरकार बनी उसमें 14 राजनीतिक दल सम्मिलित रहे हैं हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार में साम्यवादी दल और जनसंघ दोनों थे दोनों की सरकार में हिस्सेदारी थी जबकि पंजाब में जो गठबंधन सरकार बनी उसमें साम्यवादी दल जनसंघ तथा अकाली दल साथ दिखाई देते हैं। इसलिए उस समय सरकार बनाना प्राथमिकता दिखाई देती है ना कि सिद्धांत इसी के कारण यह भी पाया गया है यह गठबंधन पूर्णकालिक नहीं रहे इस गठबंधन में बनी हुई कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाई। इसलिए जो अनुभव रहा बहुत ही अच्छा नहीं कहा जा सकता।

7.5 गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली

भारत में गठबंधन सरकार के कार्य करने के तौर तरीके बहुत ही सकारात्मक, आसान रूप नहीं रहे खासतौर से शुरुआती दिनों में जो गठबंधन सरकार बनी उस के संदर्भ में विशेष रूप से कहा जा सकता है यदि बाद की सरकारों के गठन और उसके परिचालन में भी इस तरह के सवाल उठाए जाते रहे परंतु वर्तमान में भारत के गठबंधन की सरकार की राजनीतिक और कार्य संस्कृति में कुछ सुधार होता हुआ दिखाई दे रहा है। गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली को हम तभी बेहतर तरीके से जान सकते हैं जब हम सरकार के गठन के तरीके को समझ पाएं क्योंकि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं कि देश में संसदीय शासन प्रणाली है जिसमें बहुमत की सरकार बनती है अर्थात निम्न सदन में जिस दल को बहुमत प्राप्त हो। दल के नेता को राष्ट्रपति सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते हैं । लेकिन जब किसी दल को बहुमत ना हो तो कई दल मिलकर के सरकार बनाते हैं। क्योंकि भारत में देखा गया है कि इस प्रकार से बनने वाले गठबंधन सामान्य न्यूनतम साझा कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धांत के आधार पर बनते हैं। कई बार उनमें सिद्धांत जनित मतभेद और भिन्नता दिखाई देती है लेकिन वे न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर सरकार बनाने और उसको चलाने का कार्य करते हैं। लेकिन व्यावहारिक अनुभवों से यह देखा गया है कि इस प्रकार से बनाई जाने वाली सरकार में लोकहित राष्ट्रहित प्राथमिक नहीं रहा है। राष्ट्र की यदि राष्ट्रीय स्तर की सरकारों के संदर्भ में देखें तो राष्ट्र के विभिन्न पक्षों में विकास की आकांक्षाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा की जरूरतों में तालमेल बैठाने में उस सीमा तक सफलता नहीं प्राप्त रही जिस सीमा तक अपेक्षित थी। क्योंकि देश विविधताओं से युक्त है जहां सामाजिक संरचना में विविधता है सांस्कृतिक तौर तरीके में विविधता है, जिसकी वजह से हितों में विभिन्नता और विविधता दिखाई देती है इन्हें न्यूनतम स्तर तक पूर्ति और इन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ने का चुनौतीपूर्ण कार्य सरकार के सामने होता है। इसी के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा जो आंतरिक सुरक्षा और वाह्य सुरक्षा दोनों को समाहित करती है इसकी प्राथमिकता भी सरकार की जिम्मेदारी होती है। परंतु चूंकी अधिकांश गठबंधन सरकारों का गठन किसी निश्चित सिद्धांत या

मूल्यों के अनुसरण करने वाले विभिन्न राजनीतिक दलों से मिले हुए सरकार तो होती नहीं है। किसी कारण से इस प्रकार से गठित हुई सरकार है अपने कार्यकाल को प्रायः नहीं पूर्ण कर पाए। राज्यों की सरकारें तो अपवाद ही है जिन्होंने अपना कार्यकाल पूर्ण किया है । जबकि इस बात को राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो 1977 में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार बनी जिसने अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं किया वही बात 1989, 1991, 1996 और 1998 के संदर्भ में कही जा सकती है।

7.6 परिवार की आकांक्षा और दलबदल आधारित गठबंधन

गठबंधन सरकार में विभिन्न राजनीतिक दल मिलकर के सरकार बनाते हैं और यह विभिन्न राजनीतिक दल प्रायः किसी विशेष क्षेत्र जाति भाषा धर्म अर्थात विशेष हित पर आधारित होते हैं, जिनमें परिवार आधारित भारत में दिखाई देता है। परिवार आधारित नेतृत्व होने के कारण जिनमें वंशानुगत परंपरा भी दिखाई देती है। यह गठबंधन राष्ट्रहित और लोकहित के लिए प्राथमिक ना हो करके उन दलों के अपने निजी हित और खासतौर से उस दल विशेष के नेतृत्व अर्थात उस परिवार के निजी हितों के इर्द-गिर्द घूमता हुआ दिखाई देता है। इसलिए राष्ट्र हित बाधित होता है। साथ ही इस प्रकार की परिस्थिति में सरकार अस्थिर हो जाती है और समय पूर्व सरकार भंग हो जाती है।

कई बार दल बदल के कारण भी गठबंधन की सरकार बनती हुई दिखाई देती है भारत में जो दलाबादल दिखाई देता है उसमें भी राष्ट्र के विकास और सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं के दृष्टिगत दल बदल नहीं दिखाई देताहै। वरन ऐसा व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति अर्थात दल के नेतृत्व के निजी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु दिखाई देता है। एक ही दल में कई समूह उठ खड़े होते हैं, जो उप हितों को ध्यान में रखकर अपने दल के खिलाफ जाकर विघटन कर, अन्य दलों से मिलकर के सरकार बनाने का भी कार्य करते हैं, क्योंकि वह अस्थिर व्यक्तित्व के रूप में दिखाई देते हैं, क्योंकि वह अपने दल के साथ नहीं जुड़ पा रहे हैं, उससे अलग होकर सरकार बनती है और उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, तो वह वहां से भी खिसक कर सरकार को गिराने का और स्थिर करने का कार्य करते हैं।

अस्थिर सरकार के होने के कारण लोकतंत्र की भावना के अनुरूप सरकार विकास की आवश्यकताओं जनकल्याणकारी नीतियां और कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक न तो बना पाती हैं न ही उनको लागू कर पाती है जिससे प्रांत विशेष में वह प्रांत तथा देश के स्तर पर यदि यह होता है तो अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रकार के प्रगति और उत्थान के कार्यक्रम गतिशील नहीं हो पाते और विकास की गति रुक जाती है।

किसी भी समाज की पहली जरूरत होती है उसके लोगों को सुरक्षा प्राप्त हो, उसके लोगों के व्यक्तित्व के विकास के आवश्यक अवसर प्राप्त हो, उन्हें जीवन निर्वाह की न्यूनतम आवश्यक वस्तुओं की सहज उपलब्ध सुनिश्चित हो सके लेकिन यह तभी संभव हो सकता है जब विकास का पहिया तेजी से आगे बढ़े। परंतु यदि बहुमत की सरकार नहीं है स्थिर सरकार नहीं है तो गठबंधन की सरकार है ऐसी स्थिति में विकास और प्रगति की महान कहानी लिखना कमजोर गठबंधन की सरकार की क्षमता से बाहर का विषय होता है और समाज राष्ट्र प्रगति की राह से पीछे छूट जाता है तथा अंतरराष्ट्रीय चुनीतियों के समक्ष भी खड़ा होने की स्थिति में अपने आप को नहीं पाता है, जो दीर्घकाल तक राष्ट्र के लिए बहुत ही नुकसानदेह साबित होता है।

यहां एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पहली बार 1967 में 8 राज्य में गैर कांग्रेसी सरकार बनी तथा राष्ट्रीय स्तर पर 1977 में गैर कांग्रेसी सरकार बनी। फिर बाद के दिनों में राष्ट्रीय स्तर पर कई गैर कांग्रेसी सरकार बनी जैसे 1999 से 2004, 2014 से 2019 और 2019 में गठित सरकार प्रायः गठबंधन की सरकार सफलतापूर्वक ना तो सरकार ही चला पाई नहीं सरकार के द्वारा प्राथमिकताओं के निर्धारण और विकास के कार्यों को आगे बढ़ाया जा सके इसे प्रदेश या देश में विकास की गति तीव्र हो सके इसका परिणाम यह हुआ कि जनसामान्य में यह संदेश गया कि कांग्रेस के बिना कांग्रेस से बाहर किसी में सरकार चलाने की सामर्थ नहीं है इसका लाभ कांग्रेस को बराबर मिला। क्योंकि यह दिखाई देता है कि गठबंधन गैर कांग्रेसी गठबंधन सरकार की असफलता के बाद कांग्रेस और मजबूती के साथ चुनाव में आई और उसे राजनीतिक सफलता प्राप्त हुई परंतु 1999 में 2014में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेतृत्व में सरकार ने अपना कार्यकाल पूर्ण किया और देश की राजनीति को खासतौर से गठबंधन सरकार की राजनीति को एक नए आयाम तक पहुंचा दिया और यह संदेश दिया किया गठबंधन की सरकार न केवल सफलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूर्ण कर रही हैं वरन विकास की और राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी प्राथमिकताओं को तय करने में कभी भी पीछे नहीं रही और इस पर भी काफी हद तक सफलतापूर्वक कार्य करने का काम किया है।

गठबंधन सरकारों में अभी देखने में आया है राज्य के स्तर पर मुख्यमंत्री और राष्ट्रीय स्तर पर प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद संबंधित प्रदेश और भारत को वह मजबूत नेतृत्व नहीं दे सके जिसकी राज्य के संदर्भ में मुख्यमंत्री से ओर अखिल भारतीय स्तर पर प्रधानमंत्री से अपेक्षा होती है।परंतु भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन सरकार की राजनीती में दिखाई दे रहा है वह जैसा कि हमने देखा 1999-2004(NDA), 2004 से 2009, 2009 से 2014 (UPA) और 2014 से 2019(NDA) के एनडीए की सरकार जिसने अपने कार्यकाल को पूर्ण किया। जिसमें 2019

(NDA) की सरकार ने दो महत्वपूर्ण मसलों पर इन्होंने बड़े ही ऐतिहासिक कार्य की है खासतौर से इनकी नीतियों और कार्यक्रमों को देखा जाए तो इन्होंने समावेशी लोकतांत्रिक नीतियां तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए तथा भारत की राजनीति को भी रणनीति की स्थिति को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा तैयारियों को भी आगे बढ़ाने का कार्य किया है साथ ही राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में कुछ और मजबूत कार्य किए जिसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है अनुच्छेद 370 और 35A की समाप्ति। इसका प्रमुख कारण इस गठबंधन में भी भाजपा का बहुमत में होना तथा विकास सुरक्षा, सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय एकीकरण को लेकर स्पष्टता।

7.7 मिश्रित या गठबंधन सरकारों के असफलता के कारण

उपरोक्त अध्ययन में हमने पाया है कि कि देश में अधिकाँश गठबंधन की जो सरकारें बनी है और लोकहित और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की तृप्ति या राज्य के संदर्भ में विभिन्न समूहों के हितों की पूर्ति और राज्य के विकास को गति देने के लिए न हो करके दलों की निजी आकांक्षाएं और दलीय नेतृत्व के निजी आकांक्षाओं के कारण होते हुए दिखाई देती है। इसकी वजह से दलों में बहुत ही दल परिवर्तन दिखाई देता है। दल परिवर्तन के कारण क्योंकि यह दल परिवर्तन निजी आकांक्षा और हितों की पूर्ति के लिए होता हुआ दिखाई देता इसलिए सरकार की स्थिरता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। और जब-जब गठबंधन की सरकार जहां-जहां बनी है अपवाद को छोड़ दिया जाए वह अस्थिरता की शिकार हुई। जिसकी वजह से विकास नहीं हो सका क्योंकि परस्पर भिन्न विचारधाराओं के राजनीतिक दलों में सरकार बनाने के लिए गठबंधन हुए | इसलिए इनमें उस स्तर का संबंध, वह सहयोग नहीं दिखाई देता जो एक सरकार को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए आवश्यक होता है यद्यपि बनने वाली गठबंधन सरकार है निश्चित रूप से भिन्न वैचारिक आधार के होने के कारण न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार गठित हुई लेकिन अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं के दबाव के चलते न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर भी वह बहुत लंबे समय तक टिक नहीं पाए, जिससे सरकार को चलाने में बड़ी दिक्कतें हुई और सरकार अपना कार्यकाल पूर्ण करने के पहले समर्थन वापसी के कारण विघटित हुई।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में पहली बार कब गठबंधन की सरकार बनी है?

2. राष्ट्रीय स्तर पर भारत में सर्वप्रथम किस वर्ष गठबंधन सरकार का गठन किया गया ?

3. सर्वप्रथम किस वर्ष बनी गठबंधन सरकार में एक दल को बहुमत भी रहा है?

7.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हमें कर सकते हैं की स्वतंत्रता के बाद के तीसरे आम चुनाव के बाद राज्यों के चुनाव में गठबंधन की सरकारों का दौर शुरू हुआ और धीरे-धीरे वह 1967 से शुरू होकर 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार का गठन हुआ | जो आगे 1989 से प्रारंभ होकर के आज तक गतिशील है। लेकिन समय के साथ साथ गठबंधन सरकार की प्रकृति और उसकी कार्यप्रणाली में बहुत ही अंतर दिखाई देता है। शुरुआती दिनों में यह दिखाई दे रहा है कि जो गठबंधन बने वे उस सत्ता प्राप्ति के लिए बने अर्थात निजी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बने जिससे सरकारों में अस्थिरता बहुत दिखाई देती है बाद के दिनों में धीर-धीरे खासतौर से 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 में भी सरकार गठबंधन की बनी लेकिन पूर्व की अपेक्षा अलग दिखाई दे रही है। जिसमें 2014 और 2019 के सन्दर्भ में विशेषरूप से उल्लेखनीय है उसका कारण यह रहा कि इसके पूर्व जी क्षेत्रीय दल थे इतनी मजबूत थे इस दौर में धीर-धीरे कमजोर हुए हैं लेकिन 1999 से लेकर अब तक के गठबंधन सरकारों में भी प्राकृतिक भिन्नता दिखाई देती है क्योंकि 1999,2004 और 2009 में गठित जो गठबंधन की सरकार थी उसमें किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत नहीं प्राप्त था। इसलिए इन सरकारों की प्रकृति और 2014 और 2019 में गठित गठबंधन की सरकार पूर्व गठबंधन की सरकार से ज्यादा मजबूती से कार्य करते हुए दिखाई दे रही है। चाहे वो विकास के संदर्भमें हो, राष्ट्रीय स्तर पर या देश के किसी हिस्से के संदर्भ में हो या सुरक्षा देने आवश्यकताओं के संदर्भ में हो । सरकार बड़ी मजबूती से निर्णय और उस पर कार्यवाही का कार्य कर रही है। वह सुरक्षा चाहे आंतरिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ है या वाह्य सुरक्षा से जुड़ा हो। इन सभी मसलों पर वर्तमान गठबंधन की सरकार पूर्व के गठबंधन की सरकार के अपेक्षा ज्यादा मजबूती से खड़ी है और आगे बढ़ रही है। उसका कारण है कि 2014 और 2019 की जो गठबंधन की सरकार है यह अपने में विविधता को समाहित करने का कार्य कर रही है। साथ ही इसमें एक राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त होने के बावजूद गठबंधन की कमजोरियों से मुक्त है। इन दो सरकारों में अर्थात 2014 और 2019 की सरकार में नहीं दिखाई देती गठबंधन की सीमाएं इन सरकारों में नहीं दिखाई देती । इसलिए यह सफलतापूर्वक कार्य करते हुए आगे बढ़ रही हैं इसलिए भारत के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत में जब से गठबंधन सरकार का दौर शुरू हुआ है तब से उसकी प्रकृति में लगातार परिवर्तन हो रहा है और

वर्तमान समय तक आते-आते एक मजबूत गठबंधन सरकार का दौर देश में प्रारंभ हुआ है निश्चित रूप से यह देश में विविधता को एक साथ लेकर चलने की दिशा में भी मजबूत उदाहरण के रूप में सिद्ध होगा। साथ ही यह द्विदलीय पद्धति की और भी देश को ले जाएगा जो देश को मजबूती प्रदान करेगा।

7.9 शब्दावली

गठबंधन सरकार - आम चुनाव में जब किसी भी दल को बहुमत न प्राप्त हो तो, कई दल मिलकर सरकार का गठन करते हैं या चुनाव पूर्व कई दल मिलकर चुनाव लड़ें और बहुमत प्राप्त कर सरकार का गठन करे तो उसे गठबंधन सरकार कहते हैं।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1967, 2.1977, 3.2014

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डिफेक्षन

2. जे.सी. जोहरी - रिफलेक्षन आफ इंडियन पालिटिक्स

3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

4. जे.सी.जोहरी - भारतीय शासन और राजनीति

5. एस. एम सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.बी.एल. फडिया- भारतीय शासन और राजनीति

2.एम.पी.राय, आर.एन. त्रिवेदी - भारतीय सरकार एवं राजनीति

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में गठबंधन सरकार की बदलती प्रकृति की विवेचना कीजिये।

इकाई 8 : चुनाव सुधार

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 चुनाव सुधार: पृष्ठभूमि
8.4 चुनाव सुधार से संबन्धित प्रमुख समितियाँ एवं आयोग
8.5 भारत में चुनाव सुधार : कलानुक्रम
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रभावी एवं सुचारु संचालन के लिए निष्पक्ष, स्वतंत्र तथा पारदर्शी चुनाव अपरिहार्य हैं । बदलती सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप समय-समय पर चुनाव प्रणाली में सुधार की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है। चुनावी व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा अनेक समितियों और आयोगों का गठन किया गया, जिनकी सिफारिशों के अनुरूप चुनाव प्रणाली में विभिन्न सुधार लागू किए गए हैं। नागरिक समाज के दबाव के चलते सरकारों द्वारा चुनाव व्यवस्था को अधिक विश्वसनीय बनाने के कई प्रयास किए गए हैं यह सभी प्रयास चुनाव सुधार कि श्रेणि में आते हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. चुनाव सुधारों की आवश्यकता को जान सकेंगे

2. चुनाव सुधार के लिए गठित विभिन्न समितियों के बारे में जानेंगे

3. विभिन्न चुनाव सुधार और उनके कालक्रम को समझ सकेंगे

8.3 चुनाव सुधार: सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

चुनाव सुधार वे विधिक, संस्थागत और प्रक्रियात्मक परिवर्तन हैं, जो चुनाव व्यवस्था को अधिक निष्पक्ष, सुलभ और विश्वसनीय बनाने के उद्देश्य से किए जाते हैं।
चुनाव सुधार की प्रक्रिया मुख्यतः तीन प्रमुख बिंदुओं पर केंद्रित रहती है—

1. चुनावों की **निष्पक्षता** सुनिश्चित करना
2. चुनावों की **स्वतंत्रता** बनाए रखना
3. चुनावों के माध्यम से **सार्थक राजनीतिक सहभागिता** सुनिश्चित करना

एक आदर्श चुनाव प्रणाली लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व को सुदृढ़ करने का कार्य करती है। **हन्ना पिटकिन** के अनुसार लोकतंत्र की आत्मा **प्रतिनिधित्व** में निहित होती है। पिटकिन ने अपनी

पुस्तक द *कॉन्सेप्ट ऑफ रिप्रेजेंटेशन* (The Concept of Representation, 1967) में प्रतिनिधित्व को औपचारिक (formal), वर्णनात्मक (descriptive), प्रतीकात्मक (symbolic) और सार्थक (substantive) — इन चार श्रेणियों में विभाजित किया है। मतदान आयु घटाना तथा मतदान में बाधाओं को कम करने जैसे सुधार प्रतिनिधित्व के दायरे को विस्तृत करते हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों के पूर्ण प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करते हैं।

जोसेफ शूम्पीटर जैसे विचारकों ने लोकतंत्र में चुनावों की **प्रक्रियात्मक** (procedural) शुद्धता पर बल दिया है। ईवीएम का प्रयोग, बूथ कब्जा-विरोधी कानून जैसे सुधारों ने चुनावों की प्रक्रियात्मक निष्पक्षता को सुदृढ़ बनाने का कार्य किया है।

लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण तत्व **राजनीतिक समानता** है। **रॉबर्ट डाहल** के अनुसार लोकतंत्र की बुनियाद राजनीतिक समानता पर टिकी होती है। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया में समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। चुनाव सुधार इस सिद्धांत को व्यवहार में उतारने का एक प्रमुख माध्यम हैं।

नव-संस्थागतवादी विद्वानों के अनुसार लोकतंत्र केवल आदर्शों से नहीं, बल्कि मजबूत संस्थाओं से संचालित होता है। भारत में निर्वाचन आयोग को संवैधानिक दर्जा देना, उसकी स्वतंत्रता बढ़ाना और उसे व्यापक अधिकार प्रदान करना इसी सोच का परिणाम है। चुनाव सुधारों का एक बड़ा हिस्सा निर्वाचन आयोग को एक स्वायत्त और निष्पक्ष संस्था के रूप में सशक्त करने से संबंधित रहा है।

8.4 चुनाव सुधार से संबन्धित प्रमुख समितियाँ एवं आयोग

समय-समय पर गठित विभिन्न समितियों के सुझावों और अनुशंसाओं के आधार पर ही भारत में निर्वाचन प्रक्रिया में सुधार हुआ है। इन समितियों द्वारा निर्वाचन प्रक्रिया में व्याप्त समस्याओं को चिन्हित कर उनके समाधान का प्रयास किया गया है।

(1) तारकुंडे समिति (1974–1975)

तारकुंडे समिति का गठन जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में प्रारंभ किए गए सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के दौरान किया गया था। यह एक गैर-सरकारी नागरिक समिति थी जिसे भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं के क्षरण, विशेषकर चुनावी अनियमितताओं की समस्या पर विचार करने के उद्देश्य से गठित किया गया था।

तारकुंडे समिति ने चुनाव आयोग को अधिक स्वतंत्र और शक्तिशाली बनाने का सुझाव दिया तथा सत्तारूढ़ दल द्वारा चुनावों में सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग पर भी प्रकाश डाला। समिति की अनुशंसाओं में चुनावी हिंसा, बूथ कब्जा और मतदाताओं को डराने जैसी प्रवृत्तियों पर कठोर नियंत्रण पर भी ज़ोर दिया गया।

यद्यपि यह समिति सरकारी नहीं थी, फिर भी इसने चुनाव सुधारों पर राष्ट्रीय बहस को गति दी और बाद की समितियों के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया।

(2) दिनेश गोस्वामी समिति (1990)

वी.पी. सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा चुनाव सुधारों के अध्ययन हेतु तत्कालीन कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में इस समिति का गठन किया गया। गोस्वामी समिति ने चुनाव प्रचार के खर्च पर नियंत्रण,स्वतंत्र उम्मीदवारों के लिए प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि, चुनावी अपराधों के शीघ्र निपटारे के लिए विशेष न्यायाधिकरणों की स्थापना एवं मतदान और मतगणना की प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाने जैसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

इस समिति की कई सिफारिशों को 1996 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन के माध्यम से लागू किया गया।

(3) वोहरा समिति (1993)

वोहरा समिति का गठन राजनीति के अपराधिकरण और राजनीति, अपराध और नौकरशाही के बीच बढ़ते गठजोड़ जैसे गंभीर मुद्दे की जांच के लिए किया गया था। इस समिति ने चुनाव सुधारों के माध्यम से राजनीति के अपराधीकरण पर त्वरित रोक लगाने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया। इस समिति ने उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि के खुलासे जैसे सुधारों के लिए नैतिक और वैचारिक आधार प्रदान किया।

(4) इंद्रजीत गुप्ता समिति (1998)

चुनावों में बढ़ते खर्च और धनबल की भूमिका के संदर्भ में गठित इस समिति ने लोकसभा और विधानसभा चुनावों में आंशिक रूप से राज्य द्वारा चुनाव व्यय वहन किए जाने का सुझाव दिया। समिति के अनुसार इस प्रकार सरकारी वित्तपोषण केवल मान्यता-प्राप्त राजनीतिक दलों तक सीमित रखा जाना चाहिए। साथ ही समिति ने चुनावों में निजी और कॉरपोरेट चंदे पर नियंत्रण पर भी ज़ोर दिया।

यद्यपि इसके सुझाव पूर्णतः लागू नहीं हुए, फिर भी चुनावों में वित्तीय सुधारों की ओर ध्यान आकर्षित करने में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही।

(5) भारत विधि आयोग के प्रतिवेदन

भारत विधि आयोग की **170वीं रिपोर्ट (1999)** में चुनाव कानूनों की व्यापक समीक्षा की गयी। समिति द्वारा फ़र्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली के विकल्प जैसे लिस्ट प्रणाली या अन्य मिश्रित प्रणाली पर विचार करने की अनुशंसा की गयी। साथ ही लोकसभा की सीटों में वृद्धि का भी सुझाव दिया गया। चुनावी अपराधों की स्पष्ट परिभाषा और कड़ी सज़ा की अनुशंसा की और साथ ही उम्मीदवारों की अयोग्यता से संबंधित प्रावधानों को मजबूत करने का भी सुझाव दिया गया।

भारत विधि आयोग की **244वीं रिपोर्ट (2014)** में राजनीति के अपराधिकरण पर सख्त नियंत्रण और झूठे शपथ पत्र पर उम्मीदवार के अयोग्य घोषित किए जाने की प्रक्रिया पर विशेष बल दिया गया।

भारत विधि आयोग की **255वीं रिपोर्ट (2015)** में भी चुनाव सुधार से संबन्धित विभिन्न समसामयिक मुद्दों पर अनेक सुझाव दिये गए।

(6) संविधान के कार्यकरण की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (2000–2002)

एम.एन. वेंकटचलैया की अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने निर्वाचन के क्षेत्र पर कई अनुशंसाएँ की। इसने निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता को और सुदृढ़ करने का सुझाव दिया साथ ही चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए कानूनी सुधार पर ज़ोर दिया। लोकतांत्रिक संस्थाओं के बीच संतुलन बनाने की बात भी इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में रखी।

(7) भारत निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट (2004)

यह रिपोर्ट निर्वाचन आयोग द्वारा स्वयं प्रस्तावित सुधारों पर आधारित थी। इस रिपोर्ट में उम्मीदवारों द्वारा आपराधिक मामलों और संपत्ति के अनिवार्य खुलासे, चुनाव खर्च की निगरानी के लिए सख्त व्यवस्था तथा मीडिया और चुनाव प्रचार से संबंधित नियमों का विनियमन जैसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये गए जिनमें से कई प्रशासनिक और कानूनी सुधार लागू भी किए गए।

(8) द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2007)

वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने राजनीति के अपराधीकरण को लोकतंत्र के लिए गंभीर खतरा माना।

इस आयोग ने चुनाव सुधारों को शासन की नैतिकता से जोड़ते हुए सार्वजनिक जीवन में जवाबदेही और पारदर्शिता बढ़ाने पर विशेष बल दिया।

(9) तनखा समिति (2010)

इस समिति का उद्देश्य था चुनाव कानूनों और सुधारों से जुड़े विविध समकालीन प्रश्नों का अध्ययन।

तनखा समिति द्वारा चुनाव खर्च की सीमा और निगरानी को प्रभावी बनाने, चुनावी प्रक्रियाओं में कानूनी अस्पष्टताओं को दूर करने और निर्वाचन आयोग की भूमिका को अधिक स्पष्ट करने का सुझाव दिया गया।

8.5 प्रमुख चुनाव सुधार

1988 के 61वें संविधान संशोधन के माध्यम से मतदान की न्यूनतम आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। राजीव गांधी सरकार के इस निर्णय का उद्देश्य देश की युवा आबादी, जो अब तक राजनीतिक प्रतिनिधित्व से वंचित थी, उसे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने की क्षमता प्रदान करना तथा अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का अवसर देना था।

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में 1989 में धारा 13सीसी जोड़कर यह व्यवस्था की गई कि मतदाता सूची के निर्माण, पुनरीक्षण एवं संशोधन से जुड़े अधिकारी और कर्मचारी उस अवधि में निर्वाचन आयोग के प्रतिनियुक्त माने जाएंगे तथा वे आयोग के प्रत्यक्ष नियंत्रण और अनुशासन के अधीन कार्य करेंगे। इससे चुनावी कार्यों में प्रशासनिक निष्पक्षता को सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।

उसी वर्ष जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन कर इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों के प्रयोग के लिए विधिक प्रावधान जोड़े गए।

1989 में ही धारा 58ए को जोड़कर बूथ कब्जे की स्थिति में चुनाव को निरस्त (काउंटरमैंड) करने का प्रावधान किया गया।

1993 में मतदाताओं के लिए फोटो पहचान पत्र, अर्थात् निर्वाचक फोटो पहचान पत्र (ईपीआईसी) की व्यवस्था प्रारम्भ की गई। इसकी अनुशंसा दिनेश गोस्वामी समिति ने की थी। यह व्यवस्था मतदाता धोखाधड़ी रोकने में सहायक सिद्ध हुई।

1996 में दिनेश गोस्वामी समिति के सुझावों को स्वीकार करते हुए मतदान दिवस पर सार्वजनिक अवकाश घोषित करने की व्यवस्था की गई, ताकि प्रत्येक पात्र नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग कर सके।

1996 में ही मतदान केंद्र की परिधि में शस्त्र लेकर जाने को दंडनीय अपराध घोषित किया गया। साथ ही मतदान दिवस से पूर्व एवं मतदान की समाप्ति तक निर्वाचन क्षेत्र में मदिरा की बिक्री, खरीद और वितरण पर कठोर प्रतिबंध का प्रावधान किया गया।

उसी वर्ष चुनावी उम्मीदवारों के मतपत्र पर नामों के प्रकाशन का क्रम निर्धारित किया गया, जिसके अंतर्गत पहले मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार, फिर पंजीकृत राजनीतिक दलों के उम्मीदवार और अंत में स्वतंत्र उम्मीदवारों के नाम प्रकाशित किए जाने का प्रावधान किया गया।

उसी वर्ष दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाया गया। साथ ही जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में धारा 151ए जोड़कर किसी रिक्ति की स्थिति में उप-चुनाव छह माह के भीतर कराना अनिवार्य किया गया।

1996 में चुनाव प्रचार की अवधि को भी कम किया गया।

1996 में राष्ट्रीय प्रतीकों के अपमान को गंभीरता से लेते हुए यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रीय ध्वज, संविधान अथवा राष्ट्रगान के अपमान से संबंधित अपराधों में दोषसिद्ध व्यक्ति छह वर्षों तक चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य होगा।

1998 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन कर स्थानीय निकायों, सरकारी उपक्रमों, विश्वविद्यालयों, भारतीय जीवन बीमा निगम तथा सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों के कर्मचारियों को भी चुनावी ड्यूटी हेतु अधिगृहीत (रिक्विज़िशन) करने का प्रावधान जोड़ा गया।

इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों का वास्तविक प्रयोग 1998 में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली के विधानसभा चुनावों में कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में किया गया।

1999 में गोवा के जून 1999 के विधानसभा चुनावों में पहली बार पूर्णतः इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों का प्रयोग किया गया।

1999 में कुछ विशेष वर्गों के लिए डाक मतपत्र की व्यवस्था की गई, जिससे वे डाक माध्यम से अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकें।

2003 में सेवा मतदाताओं (सैन्य एवं अर्धसैनिक बलों में कार्यरत कर्मियों) के लिए प्रॉक्सी मतदान की व्यवस्था की गई। इसके अंतर्गत ऐसे मतदाता आवेदन कर अपने किसी विश्वासपात्र व्यक्ति को अपनी ओर से मतदान करने के लिए प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं।

2003 में चुनावी उम्मीदवारों द्वारा अपने आपराधिक इतिहास, संपत्ति, देनदारियों एवं शैक्षणिक योग्यता का शपथ-पत्र के माध्यम से खुलासा करना अनिवार्य किया गया।

2009 में उन सभी कर्मचारियों को, जो चुनावी ड्यूटी के लिए निर्वाचन आयोग में प्रतिनियुक्त हों, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के कदाचार संबंधी प्रावधानों के अंतर्गत लाया गया।

2009 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 24 में संशोधन कर निर्वाचन पंजीकरण अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध जिलाधिकारी या अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट स्तर के अधिकारी को अपीलीय प्राधिकारी नियुक्त किया गया।

2009 के बाद किए गए सुधारों के अंतर्गत चुनावी आचरण को और अधिक नियंत्रित किया गया। एक्ज़िट पोल पर प्रतिबंध लगाकर मतदाताओं की स्वतंत्र इच्छा की रक्षा करने का प्रयास किया गया।

2010 में विदेश में निवास करने वाले भारतीय नागरिकों के लिए मताधिकार प्रयोग की व्यवस्था प्रारम्भ की गई।

2013 में मतदाता सत्यापन योग्य कागज़ी पर्ची प्रणाली (वीवीपीएटी) का प्रयोग शुरू किया गया। यह व्यवस्था इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों के मतों के स्वतंत्र सत्यापन में सहायक है तथा उनकी विश्वसनीयता बनाए रखने में योगदान देती है।

2013 में निर्वाचन आयोग द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के पीयूसीएल बनाम भारत संघ (2013) वाद में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में चुनावों में 'इनमें से कोई नहीं' (एनओटीए) विकल्प प्रारम्भ किया

गया। इसके माध्यम से मतदाता यह दर्ज कर सकता है कि वह चुनाव में खड़े किसी भी उम्मीदवार को योग्य नहीं मानता।

2013 में लिली थॉमस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) को अमान्य घोषित किया तथा यह निर्देश दिया कि आपराधिक मामले में दोषसिद्धि होने पर चुनाव लड़ने की अयोग्यता दोषसिद्धि की तिथि से ही प्रारम्भ हो जाएगी।

2015 से इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों पर उम्मीदवारों के नाम और चुनाव चिन्ह के साथ उनकी फोटो प्रदर्शित करने की व्यवस्था प्रारम्भ की गई, ताकि मतदाता भ्रम से बच सकें और अपने मताधिकार का सही ढंग से प्रयोग कर सकें।

2021 में चुनाव कार्यों के लिए परिसरों को अधिगृहीत करने संबंधी प्रावधानों को और अधिक विस्तृत किया गया।

2021 में ई-ईपीआईसी (इलेक्ट्रॉनिक मतदाता फोटो पहचान पत्र) की व्यवस्था प्रारम्भ की गई।

चुनावों को दिव्यांगजनों के लिए अधिक सुलभ बनाने हेतु मतदान केंद्रों पर रैम्प की व्यवस्था तथा ब्रेल लिपि युक्त इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीनों की सुविधा भी प्रदान की गई।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में मतदान की न्यूनतम आयु 18 वर्ष कब की गई?

A. 1975 B. 1985

C. 1988 D. 1991

2. एनओटीए (NOTA) विकल्प को लागू करने का आधार किस निर्णय से जुड़ा है?

A. पीयूसीएल बनाम भारत संघ B. केशवानंद भारती वाद

C. लिली थॉमस वाद D. मिनर्वा मिल्स वाद

3. भारत में मतदाता फोटो पहचान पत्र (ईपीआईसी) की व्यवस्था प्रारम्भ करने की अनुशंसा किस समिति ने की थी?

A. तारकुंडे समिति B. वोहरा समिति

C. दिनेश गोस्वामी समिति D. इंद्रजीत गुप्ता समिति

8.6 सारांश

चुनाव सुधार प्रक्रिया का संबंध लोकतान्त्रिक व्यवस्था के आधारभूत ढांचे से है। लोकतन्त्र के मूल्यों को सुदृढ़ बनाने में एक सुचारु निर्वाचन व्यवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। निर्वाचन व्यवस्था न केवल निष्पक्ष और स्वतंत्र होनी चाहिए बल्कि उसे सभी नागरिकों को राजनीतिक समानता और सार्थक प्रतिनिधित्व भी प्रदान करना चाहिए। इस कारण किसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में चुनाव सुधार एक सतत प्रक्रिया है।

भारतीय परिपेक्ष्य में भी चुनाव सुधार राजनीतिक प्रतिनिधित्व को प्रभावी और सार्थक बनाने की व्यापक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग हैं। चुनाव सुधार से संबन्धित विभिन्न समितियों की अनुशंसाओं ने चुनाव व्यवस्था को संस्थागत रूप से सुदृढ़ बनाने का काम किया है। इन सिफारिशों के आधार पर मतदान आयु में कमी, ईवीएम और वीवीपैट का प्रयोग, मतदाता पहचान, चुनाव खर्च और अपराधीकरण पर नियंत्रण, उम्मीदवारों के आपराधिक और वित्तीय खुलासे, NOTA का प्रावधान आदि किए गए। इन सुधारों ने चुनाव प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी और उत्तरदायी बनाया है।

रोबर्ट डाहल के अनुसार एक लोकतन्त्र के मौलिक तत्व राजनीतिक समनता है और इस राजनीतिक समानता को एक वास्तविकता बनाने में चुनाव सुधारों की बड़ी भूमिका रही है। इसके साथ ही चुनाव सुधारों ने लोकतान्त्रिक ढ़ाचे को संस्थागत तौर पर मजबूत करने का भी कार्य किया है।

हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए की चुनाव सुधार एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और समय के साथ बदलती हुई सामाजिक एयवम राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार निर्वाचन व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता बनी रहेगी। यद्यपि भारत में चुनावी सुधारों की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है, फिर भी धनबल, बाहुबल, मीडिया के दुरुपयोग और नई तकनीकी चुनौतियों जैसे अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिन पर अभी भी व्यापक सुधार की आवश्यकता है। अतः भविष्य में भी चुनाव सुधारों की प्रक्रिया को लोकतांत्रिक मूल्यों, राजनीतिक समानता और सार्थक प्रतिनिधित्व के व्यापक लक्ष्य से जोड़ते हुए आगे बढ़ाना आवश्यक है।

8.7 शब्दावली

1. **चुनाव सुधार** – निर्वाचन प्रक्रिया को अधिक निष्पक्ष, पारदर्शी और समावेशी बनाने हेतु किए गए विधिक, संस्थागत एवं प्रक्रियात्मक परिवर्तन।

2. **निर्वाचन आयोग** – भारत का संवैधानिक निकाय, जो चुनावों के संचालन, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण का कार्य करता है।

3. **एनओटीए (NOTA)** – वह विकल्प जिसके माध्यम से मतदाता यह दर्ज करता है कि वह किसी भी उम्मीदवार को योग्य नहीं मानता।

4. **ईवीएम (इलेक्ट्रॉनिक मतदान मशीन)** – मतदान की एक इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली, जिसका प्रयोग भारत में चुनावों में किया जाता है।

5. **वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व** – प्रतिनिधित्व का वह स्वरूप जिसमें प्रतिनिधि समाज की सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब होता है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. C , 2. A, 3. C

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Pitkin, Hanna F. *The Concept of Representation*. University of California Press, 1967.

2. Dahl, Robert A. *Polyarchy: Participation and Opposition*. Yale University Press, 1971.

3. Schumpeter, Joseph. *Capitalism, Socialism and Democracy*. Harper, 1942.

4. Indian Polity: The Constitutional Framework and Topical Issues. 10th Edition. Spectrum Books.

5. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 एवं 1951

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राम आहूजा – *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था*
2. डी. डी. बसु – *Introduction to the Constitution of India*
3. एम. पी. जैन – *Indian Constitutional Law*
4. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट
5. भारत विधि आयोग की रिपोर्टें (170वीं, 244वीं, 255वीं)

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में चुनाव सुधारों की आवश्यकता और महत्व की विवेचना कीजिए।
2. भारत में चुनाव सुधारों के लिए गठित विभिन्न समितियों व उनके सुझावों की चर्चा कीजिये।

इकाई 9: राष्ट्रीय एकीकरण - बाधक तत्व , एकीकरण के उपाय

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 राष्ट्रीय एकीकरण अर्थ
9.4 राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक तत्व
    9.4.1 सांप्रदायिक वैमनस्य
    9.4.2 सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जातिवाद
    9.4.3 भाषागत क्षेत्रवाद
    9.4.4 क्षेत्रीयतावाद
    9.4.5 आर्थिक असमानता
9.5 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र संप्रभु राष्ट्र बना | इसी के साथ एक और घटना हुई , देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है | वह है भारत का विभाजन | इस विभाजन का आधार पूजा पद्धति में भिन्नता के आधार पर हुआ | दूसरे शब्दों में भारत में दूसरा सबसे बड़ा सम्प्रदाय इस्लाम आज भी है , आजादी के समय भी था | इस्लाम के अनुयायियों ने की मांग के आधार पर उनके लिए देश की स्वतंत्रता के साथ एक एनी देश का निर्माण हुआ | जिसे आज पाकिस्तान के नाम से जानते हैं |

इसके साथ यह भी जानना आवश्यक है की देश की आजादी के साथ ही देश में 500 से अधिक देशी रियासतों का भारत में विलय हुआ जिसमें कुछ के लिए सैन्य कार्यवाही भी करनी पडी है | इसी के साथ यह भी एक पहलू है की भारत में बहुत अधिक विविधता है | यह विविधता सम्प्रदाय , भाषा , जाति,संस्कृति आदि से जुडी है | इस लिए स्वतंत्रता के पश्चात देश के विभाजन होने के बाद भी एक संविधान के द्वारा देश में इन विविधातान को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया गया है | जिमें वर्णित है की सभी भारतीय नागरिक सामान हैं सभी के सामान सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकार हैं |

इसी प्रक्रिया को आगे बढाते हुए 2019में भी देश के एकीकरण के कदम के रूप में अनुच्छेद 370 और 35 A की सफल समाप्ति कर इस कार्य को और मजबूती देने का कार्य किया गया है |क्योंकि इसके होने से भारत में भारतीयों को जम्मू कश्मीर में सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित होना पड़ रहा था | यही नहीं अनुसूचित जातिऔर पिक्षणों को वह सामाजिक और राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त हो पा रहे थे जो की इसके समाप्त होने से प्राप्त हुए | इस प्रकार से विविधतायुक्त भारत में एकीकरण की दिशा में अभी भी कई बाधाये दिखाई देती है जो समय समय पर चुनौतियां पैदा करते हैं | इन विषयों का अध्ययन इस इकाई में किया गया है |

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. राष्ट्रीय एकीकरण के अर्थ के अर्थ को जान सकेंगे

2.इसके बाधक तत्वों के विविध पक्षों का अध्ययन कर सकेंगे

3.एकीकरण के बाधक तत्वों के निराकरण के उपायों को भी जान सकेंगे

9.3 राष्ट्रीय एकीकरण : अर्थ

राष्ट्रीय एकीकरण यदि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले विभिन्न घटकों को एक सूत्र में पिरोने का नाम ही राष्ट्रीय एकीकरण है | और अधिक स्पष्ट करने के लिए यहां यह जानना भी नितांत आवश्यक है भारत में जाति, धर्म, भाषा. क्षेत्र, भौगोलिक संरचना में भिन्नता, इस भिन्नता के साथ सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता आदि विविधता में पाई जातिहैं | जब राष्ट्रीय एकीकरण की बात होती है तो इन विविधताओं को समाप्त करके एक बनाने की बात नहीं है | वरन इन विविधताओं को बनाए रखते हुए सभी को एक सूत्र में पिरोने की बात है | जैसे एक माला में 108 दाने होते हैं अलग अलग होने पर न तो उनका महत्व है, ना बहुत उपयोगिता, न किसी निश्चित परिणाम की स्थिति उत्पन्न करने वाले होते हैं | जबकि उस माला के समस्त दानों को जब एक सूत्र में पिरोया जाता है तभी वह माला बनती है ,तभी उसे पूजा प्रणालियों के विविध पक्षों में उपयोग कर पाते हैं |

इसलिए यहां एकीकरण का तात्पर्य समस्त विविधताओं को एक सूत्र में पिरोना है | इसी को ध्यान में रखते हुए विविधता को सम्मान मिले देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई | क्योंकि संघात्मक शासन प्रणाली एक सर्वोच्च संविधान के द्वारा ,केंद्र और राज्य दोनों को शक्तियां प्रदान करती है | यह दोनों अपनी शक्तियों के दायरे में स्वतंत्र पूर्वक कार्य करते हैं | तथा इस विविधता पूर्ण राज्यों को एक सूत्र में पिरोने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई है | और राज्य के स्तर पर भी राज्य के अंतर्गत की विविधता को एक सूत्र में पिरोने के लिए भी राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई | क्योंकि संसदीय शासन प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद होती है और मंत्रिपरिषद के गठन में केंद्र के स्तर पर प्रधानमंत्री और राज्य के स्तर पर मुख्यमंत्री इस बात का ध्यान रखते हैं की सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के प्रतिनिधियों को मंत्रिपरिषद में स्थान मिल सके, सरकार में स्थान मिल सके ,जिससे उन्हें एहसास हो की उनका प्रतिनिधि सरकार में है इस माध्यम से वह स्वयं सरकार में हिस्सेदार है |

9.4 राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक तत्व

इसमें एक विषय का अध्ययन और उल्लेखनीय है स्वतंत्रता के पश्चात देश में एक ऐसी शासन प्रणाली की स्थापना की गई जिसमें सभी को समान सामाजिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए और अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए सभी को अवसर प्रदान किए गए | अपने लिए सुविधाओं के विस्तार के लिए सभी के अवसर प्रदान किए गए | समान राजनीतिक अधिकार ने विभिन्न जातीय

धार्मिक समूह एकीकरण और विखंडन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई | जिससे कहीं विभिन्न समूहों में नज़दीकियां दिखाई दी |तो कई समूह में बड़े तनाव और वैमनस्य की स्थितियां उत्पन्न हुई | यह जाति धर्म भाषा क्षेत्र सभी आधार पर दिखाई दिया ,क्योंकि संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया जिसमें बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने का अधिकार होता है| इसलिए बहुमत प्राप्ति के लिए विभिन्न जातियों के एकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई लेकिन इस एकीकरण परंतु इसके साथ साथ विघटन की भी प्रक्रिया भी बहुत दिखाई दी |जिससे देश के विभिन्न हिस्सों में देश की विविधताओं को एक सूत्र में पिरोने के लिए जो प्रावधान भारतीय संविधान में किए गए और जिन की कल्पना संविधान निर्माताओं ने की उसमें बहुत सी बाधाएं उत्पन्न होती हुई | जिन्हें राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में बाधाओं के रूप में चिन्हित करके अध्ययन किया जा सकता है| निम्नलिखित है---

9.4.1 सांप्रदायिक वैमनस्य

जैसा कि हमने ऊपर अध्ययन में देखा की भारत में विविधता पाई जातिहै यहां विषय के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह कहना है भारत में पूजा पद्धतियों को लेकर के बहुत ही भिन्नता पाई जातिहै इस बात का और इसके प्रभाव का अध्ययन करने से पहले यह भी जानना नितांत आवश्यक है ,की लंबे संघर्ष के उपरांत देश को 15 अगस्त 1947 को सफलता प्राप्त हुई| लेकिन इस स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ एक बहुत बड़े दुखद विभीषिका से भी गुजर रहा था देश का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन | अर्थात मुस्लिम धर्म के आधार पर एक निश्चित क्षेत्र में अपने राज्य की स्थापना का अधिकार प्राप्त हुआ |जिससे पाकिस्तान राज्य का उदय हुआ | कई बार जब हम संप्रदाय की बात करते हैं प्रथम दृष्टया हिंदू और मुसलमान के बीच तनाव और तक ही सीमित रह जाते हैं |जबकि विभिन्न संप्रदायों के बीच आंतरिक रूप से उप संप्रदायों में भी तनाव और संघर्ष बहुत दिखाई देता है| जिससे देश के विभिन्न हिस्सों में बहुत से दंगे हुए हैं | जिसमें शिया और सुन्नी के बीच का वैमनस्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है साथ ही हिंदू और देश के दुखद विभाजन के साथ ही दो बड़े संप्रदायों विशेष तौर से हिंदू और मुस्लिम के बीच सामाजिक संबंधों में अविश्वास की खाई उत्पन्न हुई |जिन कारणों से देश के विभिन्न हिस्सों में बहुत से दंगे होने का कारण, इस वजह से देश सांप्रदायिक आधार पर एक सूत्र में पिरोने की प्रक्रिया में बहुत सी बाधाएं उत्पन्न हुई |जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की एक प्रमुख बाधा के रूप में चिन्हित किया जा सकता है |

9.4.2 सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जातिवाद

भारत लोकतांत्रिक शासन प्रणाली अपनाई गई है |जिसने सभी भारतीय नागरिकों को समान राजनीति का अधिकार प्रदान किए |सभी के मतों का मूल्य समान , सभी को समान रुप से प्रतिनिधि

के रूप में निर्वाचित होने का अधिकार प्रदान किया गया है |परंतु परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना जो पदसोपान आधार पर संगठित रही है |उनमें भी उनके बीच सामाजिक और राजनीतिक बहुत दूरियां रही है| लेकिन वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली में सफलता के लिए उनको आपस में एक दूसरे के करीब आने की परिस्थितियां उत्पन्न हुई | लेकिन इस करीब आने की प्रक्रिया में जहां तक हासिये रही हुई जातियों ने संगठित होकर के प्रभुत्व संपन्न जातियों से राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को तत्पर हुई ,तो दूसरी तरफ प्रभुत्वसाली जातियों को अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा शुरू हुई और परंपरागत रूप से हासिये की जातियों को अपनी तरफ मोड़ने का कार्य प्रारंभ हुआ |किस प्रकार प्रभावशाली जातियों में आपसी तनाव और प्रभावशाली जातियों के विभिन्न घटकों और हासिये की जातोयों में मुख्यधारा से वंचित जातियों के बीच वैमनस्य दिखाई दिया| जिससे कई बार तनाव और हिंसक तनाव दिखाई देता है |इसने भी राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में बहुत बाधा उत्पन्न की है |

9.4.3 भाषागत क्षेत्रवाद

में बहुत सी विविधताएँ पाई जाति हैं | उनकी विशेषताओं में एक है भाषा जनित विविधता | भाषा संस्कृति की वाहक होती है |भारतीय संविधान की अनुसूची में 22 भाषाओं का उल्लेख है, जिससे इनको संरक्षण मिल सके और सामाजिक सांस्कृतिक विविधता को सम्मानजनक स्थान मिल सके |यद्यपि देश में भाषाओं की संख्या बहुत अधिक है जिससे सांस्कृतिक भिन्नता भी दिखाई देती है |मुस्लिम समाज को उर्दू भाषा के लेकर भावनात्मक लगाव और उसके द्वारा रोष उर्दू को राजकीय दर्जा नहीं मिल रहा है जैसा मिलना चाहिए इसलिए और उर्दू के बीच का तनाव हिंदू और मुसलमान के तनाव के रूप में बदलता हुआ दिखाई देता है |इसी प्रकार से भारत के दक्षिणी हिस्से के समाज में संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है और उनका आरोप हिंदी के अपने ऊपर थोपने जैसा भी दिखाई देता है जो प्रायः राजनीतिक अधिक होता है क्योंक हिन्दी बोलते हुए देश के सभी हिस्से के लोग दिखाई देते हैं | इस प्रकार की गलत राजनीतिकी शालियों ने भी राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा उत्पन्न की है |

9.4.4 क्षेत्रीयतावाद

भारतीय संविधान के द्वारा सभी अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा लिपि और संस्कृत को सुरक्षित रखने और संवर्धित करने का अधिकार प्रदान किया है |तथा अन्य को धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान किए गए| परंतु कई बार भाषा और संस्कृति की भिन्नता जो है वह देश के अन्य हिस्से की भाषा और संस्कृति की भिन्नता को क्षेत्रीय भिन्नता मानते हुए अपने को पृथक मानते हुए

दिखाई देते है | उसके आधार पर एक नवीन राज्य के निर्माण नवीन राज्य के गठन कल्पना की |इसके आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में समय-समय पर बहुत ही हिंसक संघर्ष हुए हैं |देश में 1956 में भाषा के आधार पर राज्य का पुनर्गठन होता है |उत्तर प्रदेश से उत्तरांचल मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ , बिहार से झारखंड अलग इकाई के रूप में गठन किया जाता है |यदपि यह कार्य प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से किया गया है |

देश के अन्य हिस्सों में बंगाल में गोरखालैंड और उत्तर-पूर्व के राज्यों में विशेष रुप से नागालैंड मेघालय मणिपुर अरुणाचल प्रदेश मिजोरम आज में इस तरह की मांगे दिखाई देती रहीं हैं | साथ ही महाराष्ट्र के विदर्भ, कर्नाटक के बेलगांव तमिलनाडु में द्रवणीस्थान, पंजाब में खालिस्तान आज क्षेत्रीयतावादी मांगे समय-समय पर उठती रही है राष्ट्रीय एकीकरण के बजाय राष्ट्रीय विघटन को प्रोत्साहित करने वाले कारकों को बढ़ावा दे रही हैं | इस प्रकार से राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में क्षेत्रीय तत्व विघटनकारी और हानिकारक है इसलिए आंदोलनों के निराकरण की नितांत आवश्यकता है

9.4.5 आर्थिक असमानता

देश को लंबे संघर्ष के बाद आजादी मिली और उस संघर्ष के पीछे सपना था देश की स्वतंत्रता | स्वतंत्र भारत में सभी नागरिकों को सम्मानजनक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक जीवन प्राप्त हो, ताकि वह अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कार्य कर सकें और एक गरिमामय जीवन जी सके इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी है और संविधान के विभिन्न भागों में आर्थिक गतिविधियों के संचालन की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है |परन्तु जिस प्रकार की उत्पादन प्रक्रिया अपनाई गई उसमें ग्रामीण क्षेत्र की उपेक्षा हुई और नगरीय क्षेत्र का तेजी से विकास इस प्रकार से गांव और नगर में खाई बनी और तनाव उत्पन्न होने लगा | साथ ही नगरीय क्षेत्रों में भी संपन्न और विभिन्न वर्ग उत्पन्न हुए |उनके बीच भी तनाव उत्पन्न हुए | यही नहीं क्षेत्र उत्पादन प्रणालियों में असमानता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में भी आर्थिक संसाधनों के वितरण में देशमें असमानता दिखाई देती है | जिससे विकास की धारा में कुछ क्षेत्र अगर बहुत बहुत आगे तो कुछ क्षेत्र बहुत पीछे छूट गए |इसी प्रकार से कुछ समुदाय बहुत आगे तो कुछ समुदाय बहुत पीछे छूट |गए इसी प्रकार से नगरीय कुछ क्षेत्र काफी आगे निकल गए तो कुछ नगर बहुत ही विकास की संक्रमण काली स्थिति में हैं | तथा गांव विकास की मुख्यधारा में नहीं जुड़ पाए |जिसके कारण गांव और नगर के विभिन्न घटकों विभिन्न समुदायों बढ़ती जनसंख्या के कारण परिसंपत्तियों के विभाजन से

परंपरागत परिसंपत्तियों के सीमित , यह सभी घटकों में नाना रूप में तनाव है जिसने राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करने के बजाय उस में बाधा उत्पन्न हुई है |

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण का मूल तात्पर्य किससे है?

A. विविधताओं को समाप्त करना B. सभी को एक समान बनाना

C. विविधताओं को बनाए रखते हुए एक सूत्र में पिरोना D. केवल सांस्कृतिक एकरूपता

2. भारत में विविधताओं को सम्मान देने हेतु कौन-सी शासन प्रणाली अपनाई गई है?

A. एकात्मक शासन B. संघात्मक शासन

C. अध्यक्षीय शासन D. तानाशाही शासन

3. राष्ट्रीय एकीकरण में प्रमुख बाधक तत्वों में कौन-सा शामिल है?

A. वैज्ञानिक विकास B. सांप्रदायिक वैमनस्य

C. औद्योगीकरण D. वैश्वीकरण

4. भारतीय संविधान में भाषाओं को संरक्षण देने हेतु कितनी भाषाएँ अनुसूची में शामिल हैं?

A. 14 B. 18

C. 22 D. 24

9.6 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय : सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत में विविधता है | विविधता के कारण अपने लक्ष्य और गंतव्य की की दृष्टि से जो भिन्नता पाई गई , जिससे वैमनस्य उत्पन्न हुआ | उस वैमनस्य ने संघर्ष को बढ़ावा दिया| जिसने राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में बाधक का कार्य किया है |यह बताएं कि धर्म जाति भाषा संस्कृति पूजा पद्धति इस प्रकार की भिन्नता से उत्पन्न समस्याएं जो थी वह सामाजिक अधिक थी राजनीतिक कम |सामाजिक कहने के पीछे कारण यह है इस समाज के विभिन्न घटकों के बीच आपसी संबंधों में जीवन शैलीगत तनाव है |उनके निराकरण के लिए राजनीतिक हस्तक्षेप की विशेष आवश्यकता नहीं होती| इसलिए सामाजिक और कुछ हद तक राजनीतिक इसलिए कि इन सामाजिक संबंधों के विनियमन के लिए न्याय संगत कानूनों का निर्माण और लागू किया जाना चाहिए |तथा इन न्याय संगत कानूनों के प्रति जन जागरण के द्वारा विविध

जनसामान्य समूह में जागरूकता उत्पन्न करने का कार्य ,प्राथमिक कार्य राजनीतिक सत्ता का है और यह कार्य सामाजिक सहयोग से ही सफलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है |इसलिए जहां तक राष्ट्रीय एकीकरण के बाधक तत्वों के निराकरण का सवाल है तो आवश्यकता इस बात की है जागरूक जनमानस होने से जनसामान्य के बीच भिन्नता को सहज स्वीकारोक्ति मिलेगी और उससे तनाव और संघर्ष की स्थिति नहीं होगी |

इन्ही बातों को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार के भाग में सभी भारतीय नागरिकों को सामान घोशोत किया है | जिसमें सभी के समान सामाजिक अधिकार की बात की गई है | साथ ही लोक नियोजन में अर्थात सरकारी पदों पर नियुक्ति में सभी को समान अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है | समस्त नागारिओकों को सामान स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान किये गये हैं | साम्प्रदायिक विविधता को ध्यान में रखते हुए सभी को अंतःकरण की सवतंत्रता का अधिकार है अर्थात अपनी पसंद की पूजा पद्धति के अनुकरण का अधिकार है | भाषा और संस्कृति की सुरक्षा के लिए अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान किये गए हैं | यद्यपि इस प्रावधान की आलोचना भी की जाती है की क्या केवल अल्पसंख्यकों को ही यह अधिकार होना चाहिए एनी को नहीं |फिर अगर एनी को यह अधिकार भारतीय नागरिक के रूप में ही स्वतः प्राप्त हो जाते हैं तो यह बात तो अल्पसंख्यकों के सन्दर्भ में लागू होती है | साथ ही अभी तक मुख्यधारा से वंचित अनुसूचित जाती और जनजाति को राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए स्थान आरक्षित किये गए हैं |

लेकिन एकीकरण के कार्य को प्रभावशाली तरीके से आगे ले जाने के लिए जन जागरण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय और मानवीय सरोकारों से युक्त एक स्वतंत्र मीडिया तंत्र का भी होना नितांत आवश्यक है ,जो निष्पक्षता से इस भिन्नता को वैमनस्य ना देने के लिए सामाजिक और राजनीतिक शिक्षण के कार्य को आगे बढ़ाएं |इस दिशा में भारत में अभूत्पोर्व सफलता अर्जित की है जिसमें सूचना के अधिकार ने पूरक का कार्य किया है |साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रणाली को आगे बढ़ाया जाए जिसमें निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया का संचालन भी बहुत महत्वपूर्ण है , जिसका सम्पादन सफलतापूर्वक भारत में किया जा रहा है | इस दृष्टि से भारत में बहुत बड़ी सफलता अर्जित की है क्योंकि भारत की चुनाव प्रणाली अपने निष्पक्षता और पारदर्शिता के लिए विश्व विख्यात है |उसी का परिणाम है स्वतंत्रता के पूर्व परंपरागत रूप से हाशिए पर रहने वाली जातियां या सामाजिक समूह आज राजनीति की मुख्यधारा में दिखाई दे रहे हैं और लाभ वितरण में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी को प्राप्त कर रहे हैं| लेकिन इस कार्य को और अधिक सफलतापूर्वक तभी संपादित किए जा सकते हैं जब एक स्वस्थ लोकतांत्रिक मानसिकता से युक्त, जो विविधता को स्वीकार करती हो, जो विविधता को वैमनस्य का नहीं सामाजिक जीवन में एक माला बनाने की

महत्वपूर्ण भूमिका में स्वीकार करता हो, ऐसे प्रशासनिक तंत्र के द्वारा ही, जन जागरण और सामाजिक एकीकरण तथा राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य को आगे बढया जाना होगा | इसलिए स्वस्थ और निष्पक्ष प्रशासनिक तंत्र की स्थापना और विकास की आवश्यकता है |यद्यपि देश ने इस दिशा में भी अच्छे मुकाम हासिल किए हैं लेकिन अभी बहुत कुछ हासिल किया जाना बाकी है |

9.7 शब्दावली

राष्ट्रीय एकीकरण- यदि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले विभिन्न घटकों को एक सूत्र में पिरोने का नाम ही राष्ट्रीय एकीकरण है |

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. C, 2. B, 3. B, 4. C

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान - दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल - हमारी न्यायपलिका
2. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण को परिभाषित कीजिये ?

२. राष्ट्रीय एकीकरण के बाधक तत्वों और उनके निराकरण के उपायों की विविचना कीजिए |

इकाई 10 भारतीय राजनीति में जातिवाद

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 भारतीय राजनीति में जाति
10.3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव
10.3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव
10.3.2.1 पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस पुस्तक के अध्ययन में विभिन्न इकाइयों में हमने यह देखा कि भारत में परंपरागत सामाजिक संरचना पाई जाती है |अर्थात जाति आधारित संरचना पाई जाती है |जिसमें पदसोपान क्रम स्पष्ट रूप से दिखाई देता है |परंपरागत रूप से कुछ जातियां उच्च स्तर की और क्रमशः नीचे आती हुई दिखाई देती हैं | परंतु स्वतंत्रता के बाद एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया |अर्थात संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया |देश में राजनीतिक जीवन में सभी समान अधिकार प्राप्त किये | तसामाजिक जीवन में भी सभी समान अधिकार प्राप्त संपन्न हुए| उच्चता और निम्नता के आधार को संविधान के द्वारा समाप्त घोषित करते हुए दंडनीय घोषित किए गए | इस आधार पर कई विशेषज्ञों का यह मानना था कि इस आधुनिक राजनीतिक प्रणाली को अपनाने के कारण भारत की जाति आधारित व्यवस्था का अंत हो जाएगा | परंतु यह समझना उनकी भूल थी | क्योंकि कोई भी राजनीतिक प्रणाली किसी अमूर्त जगत में काम नहीं करती है | वह कार्य करती है ,वह संचालित होती है, समाज में ही | इसलिए सामाजिक संरचना के सामाजिक जीवन का राजनीतिक जीवन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है | लेकिन संसदीय लोकतंत्र में न केवल स्वयं पर प्रभाव को पाया बल्कि स्वयं के द्वारा भी इस सामाजिक संरचना को, जो जाति आधारित है ,इसको भी प्रभावित किया है | इन्हीं दोनों पक्षों का अध्ययन विशेष रूप से इस इकाई में किया गया है|अंततः इस इकाई में इस बात का अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार से यह जाति व्यवस्था वर्तमान राजनीतिक राजनीतिक प्रणाली के लिए सकारात्मक रही है या नकारात्मक और अगर रही है तो किस हद तक |

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1.भारतीय राजनीति में जाति के विविध पक्षों के बारे में जान सकेंगे

2.राजनीति पर जाती के प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे

3.जाति पर राजनीतिक व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे

10.3 भारतीय राजनीति में जाति

भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है |

संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातीय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं | एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से हाशिए की जातियां के समर्थन को आगे बढ़ी तो आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक की सामाजिक दूरियां थी उनको कम करने का कार्य किया है |

इसलिए भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए रजनी कोठारी के अनुसार दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है -

प्रथम राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव डाल रही है

दूसरा जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का क्या प्रभाव पड़ रहा है

10.3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव

प्रथम तो हम जाति व्यवस्था के राजनीतिक प्रणाली पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे इस क्रम में यह चर्चा करना नितांत आवश्यक है जैसा कि की परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना पदसोपान आधारित रही है जिनमें कई बार सामाजिक दूरियां भी दिखाई देती है इस व्यवस्था के साथ स्वतंत्रता के उपरांत भारत में जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया उसे संसदीय संघात्मक लोकतंत्र कहते हैं| जिसमें प्रत्येक भारतीय नागरिक को सम्मान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए|

ऐसे में सत्ता प्राप्ति के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए सत्ता में हिस्सेदारी के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में सरकार का संचालन कौन करेगा यह है इस बात पर निर्भर करता है कि निम्न सदन में बहुमत किसके पास है अर्थात बहुमत प्राप्त करने वाले दल को सरकार बनाने का अधिकार होता है और देश के लिए कार्य करने का संवैधानिक दायित्व प्राप्त होता है इस स्थिति में है स्पष्ट करना कि जहां परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन दिखाई देता है |ऐसे में सत्ता प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न समूह एक साथ आए क्योंकि चुनाव प्रक्रिया में कोई एक जाति अपने दम पर चुनाव में बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रही |ऐसे में उसे अन्य जाति समूहों से संपर्क साध कर उनसे एकजुटता स्थापित करने का कार्य प्रारंभ किया गया| इस प्रक्रिया ने समाज में जो अभी तक भेदभाव थे उसमें काफी शिथिलता है |

परंपरागत भारतीय समाज में जो एक दूसरे से सामाजिक रुप से दूर थे अब राजनीतिक सफलता के लिए सामाजिक रुप से नजदीक आते हुए दिखाई दे रहे हैं| जो परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियां थी उनको अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए अन्य जाति समूह को साथ लेने की आवश्यकता हुई क्योंकि इन मजबूत स्थिति वाली जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा, अन्य जातियों को अपने साथ लेने के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसका परिणाम हुआ कि मुख्यधारा की जातियों में प्रतिस्पर्धा और मुख्यधारा की जातियों तथा हाथियों की जातियों में प्रतिस्पर्धा इसलिए मुख्य धारा की जातियों ने अभी तक हासिये पर रही जातियों को अपने साथ लेने का कार्य किया| जिससे इनके बीच सामाजिक दूरियां कम होती दिखाई देने लगी |परिणाम यह हुआ कि अभी तक जिन जातियों को जन्म के आधार पर उच्चता और निम्रता गरीब अमीर संपन्न विपन्न और छुआछूत के शिकार थे उन्हें भी इस लोकतांत्रिक प्रणाली में सक्रिय होने का राजनीतिक अधिकार मिला तथा मजबूत स्थिति की जातियों ने स्वयं ही उनके पास जाकर उनके घर जाकर उनको अपने साथ लेना स्वीकार किया | क्योंकि अब उन्हें अपनी पूर्व की प्रभुता संपन्न स्थिति को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था की वे राजनीतिक सफलता प्राप्तकरे | उस राजनीतिक सफलता के लिए अन्य जातियों को साथ लेना आवश्यक हो गया जिससे जातियों के बीच चाहे व्यवस्था के कारण लेकिन प्रारंभिक चरण में राजनीतिक कारणों से सामाजिक दूरियां भी कम होती हुई दिखाई पड़ी जिसका परिणाम हुआ अभी तक जो जातियां क्षत्रिय ब्राह्मण वह शूद्र या मुख्यधारा से वंचित जाती है जिनमें काफी समाजिक दूरियां भी दिखाई देती रही है अब काफी नजदीक आए |

इसके साथ ही अभी महत्वपूर्ण विषय है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए संसदीय प्रणाली की चुनाव प्रक्रिया में स्थान सुरक्षित किए गए जिसका परिणाम हुआ कि आरक्षित क्षेत्र में आरक्षित समूह की जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा हुई और इन्होंने अपनी जीत के लिए परंपरागत रूप से जो उच्च जाति थी उनके पास राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए जाने का मार्ग प्रशस्त किया |

दो तरीके से इस संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातीय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं--

एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से हाशिए की जातियां के समर्थन को आगे बढ़ी हैं

दूसरे आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई |दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक सामाजिक जो दूरियां थी उनको कम करने का कार्य है |

10.3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव

ऐसा नहीं है कि संसदीय लोकतंत्र ने ही जाति व्यवस्था को प्रभावित किया है और परंपरागत रूप से जो सामाजिक बंधन थे उनमें राजनीतिक कारणों से काफी शिथिलता आई है , सामाजिक दूरियां बढ़ती हुई दिखाई दी ,इसके साथ ही साथ जाति व्यवस्था ने भी राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है| इसकी प्रभावशीलता की परिधि के बारे में यह कहना महत्वपूर्ण है की चुनाव प्रक्रियाओं के संचालन की प्रक्रिया में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि राजनीतिक दल जाति आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जातीय राजनीतिक सफलता की बात करते हुए दिखाई देते हैं तथा विभिन्न राजनीतिक दलों से इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए गठबंधन करते हुए दिखाई देते हैं |इसलिए चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित राजनीतिक दलों के गठबंधन की दिखाई देते हैं तथा जैसा कि पूर्व के पक्ष में अध्ययन करते हुए देखा कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ा और जातियों में परिवर्तन दिखाई देता है लेकिन उसमें हमने यह भी देखा है कि राजनीतिक सफलता के लिए अर्थात सत्ता प्राप्ति के लिए बहुमत प्राप्ति की आवश्यकता होती है बहुमत अपने जाति के आधार पर ही नहीं प्राप्त किया जा सकता है | अन्य जातियों के समर्थन की आवश्यकता होती है | तो यह दिखाई देता है कि जाति आधारित राजनीतिक दलों ने जहां अपने संगठित जाति चेतना के आधार पर अपने जाति समूह के संगठित मतदान व्यवहार को प्रेरित किया तो दूसरी तरफ अपने राजनीतिक दल से अन्य जाति के प्रत्याशी को उतार कर के उनका भी समर्थन प्राप्त कर सत्ता प्राप्ति की तरफ आगे बढ़ाने का कार्य किया है | कई बार यह भी दिखाई देता है कि राजनीतिक दल अपने में ही विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली जातियों अलग-अलग जातियों को प्रत्याशी के रूप में उतारते हुए दिखाई देते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहां पर किस जाति समूह के समीकरण सफलता के अनुकूल हो सकते हैं, उसके अनुसार टिकट वितरण और प्रत्याशी का चयन कर चुनाव मैदान में उतारते हुए हुए दिखाई दिए हैं और इसके राजनीतिक सफलता के रूप में परिणाम भी दिखाई दिए है|

यहां इस बात के अध्ययन में यह भी ध्यान में रखना होगा कि अनुसूचित जाति कि संगठित राजनीतिक चेतना ,राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दोनों तरह की राजनीति को प्रभावित किया है क्योंकि न केवल क्षेत्रीय दल वरन , राष्ट्रीय दल भी अपनी संगठनात्मक ढांचे में विभिन्न जातियों को प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं ,ताकि चुनाव प्रक्रिया में उन सभी जातियों का राजनीतिक समर्थन उनको हासिल हो | साथ ही सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों के सदस्य को को मंत्री बनाकर प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं | ताकि सरकार में उन सभी को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और वह

एहसास कर सकें की सरकार उनकी है, उनके लिए कार्य करने को तत्पर है| प्रत्याशियों के चयन में भी इस प्रकार की बात क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्तर की चुनाव में स्पष्ट दिखाई देता है |यही नहीं स्थानीय चुनाव में भी प्रत्यक्ष रुप से जातीय समीकरण दिखाई देने लगे हैं क्योंकि विभिन्न आयोजन जहां पर अतीत में परंपरागत रूप से एक साथ जाते हुए सभी जातियां नहीं दिखाई देती थी |

10.3.2.1 पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव

आज पंचायत चुनाव में सफलता की आकांक्षा ने भी अलग-अलग जातियों को एक साथ आने के लिए प्रेरित किया है |यहाँ भी उसी तरह की प्रतिस्पर्धा स्पष्ट दिखाई देती है, जाति व्यवस्था ने वहां भी राजनीति को बहुत अंदर तक प्रभावित किया है |प्रथम चरण में मुख्यधारा से वंचित जातियां स्वयं में संगठित हुई और अपने प्रत्याशी को उतारकर के चुनाव में संगठित मतदान के द्वारा राजनीतिक सफलता प्राप्त की हैं | लेकिन अगले चरण में इनमें स्वयं भी प्रतिस्पर्धा दिखाई दे रही है |इसलिए इनके बीच में भी कई प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतर रहे हैं | परिणाम हो रहा है कि अन्य परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों के पास यह आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण जा रहे हैं ,ताकि वह पंचायत चुनाव में सफलता प्राप्त कर सकें| इसी के साथ मुख्यधारा की जाती जिनमें आपसी प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, यह भी अपनी राजनीतिक सफलता के लिए उन जातियों के पास जाते हुए दिखाई देते हैं जो अभी तक मुख्यधारा में नहीं रही है | इस प्रकार से जाति व्यवस्था ने भी पूरे राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है |

कई बार आलोचक कहते हैं कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के अपनाने के बाद भी भारत में जाति व्यवस्था का अंत नहीं हुआ है | जबकि संविधान की भावना के अनुरूप एक जाति विहीन समाज की कल्पना की गई थी परंतु यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है की राजनीतिक प्रक्रियाओं का संचालन अमूर्त जगत में नहीं होता है , समाज में ही होता है |इसलिए वह समाज की संरचना से प्रभावित भी होगा और उसे प्रभावित भी करेगा |इस संदर्भ में **रजनी कोठारी** का मत बहुत ही तर्कसंगत प्रतीत होता है कि "भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों में यह उम्मीद करना कि जाति व्यवस्था का अंत हो जाएगा यह ठीक नहीं है | वह मानते हैं कि कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता इसलिए यह कहना कि भारत में जाति का लोप हो रहा है व्यर्थ है|"

इसी के साथ **रजनी कोठारी** जी यह भी कहते हैं कि "जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते हैं वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में संभव

नहीं है |वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं|"

अभ्यास प्रश्न

१.भारत में कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

A.अध्यक्षात्मक B. संसदीय C. अधिनायक तंत्र D. राजतंत्र

२. भारतीय लोकतंत्र में जाती व्यवस्था के समाप्त होने की बात करने वालों की आलोचना किसने की है ?

A. लिपमेन B. ब्रेयर C. रजनी कोठारी D. शुल्ज

10.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कुछ बातें स्पष्ट हो गई की परम्परागत भारतीय समाज में आज आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को लागू किया गया है |जहां परंपरागत भारतीय समाज में नाना रूप में सामाजिक निर्योग्यताएं थी वही आधुनिक राजनीतिक प्रणाली ने सबको समान राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए |फलस्वरूप एक तरफ तो जन सामान्य के लिए सत्ता में हिस्सेदारी का अवसर प्राप्त हुआ तो दूसरी तरफ सत्ता प्राप्त करने के लिए जनसामान्य के विभिन्न घटकों जिन्हें जाति व्यवस्था के विभिन्न घटक कर सकते हैं अर्थात विभिन्न जातियों के समर्थन के लिए सहयोग के लिए और संगठन के लिए मार्ग प्रशस्त किया| यह कहना आसान नहीं है कि जाति व्यवस्था ने अच्छा किया या बुरा किया | आधुनिक राजनीतिक प्रणाली में लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि परंपरागत रूप से प्रचलित जाति व्यवस्था आधुनिक संसदीय लोकतंत्र लागू करने के उपरांत जातियों को सत्ता में भागीदारी के अवसर के साथ सामाजिक रुप से सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हुए | क्योंकि बहुमत प्राप्ति के लिए सभी जातियां एक दूसरे के सम्मेलन और विघटन की प्रक्रिया की हिस्सेदार बनी |समय-समय पर चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित प्रत्याशियों के चयन ,सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों को मंत्रिपरिषद में स्थान देना, इस प्रकार से राजनीतिक प्रणाली को जाति व्यवस्था ने प्रभावित किया |जाति व्यवस्था ने राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव महसूस किया क्योंकि जो हासिये की जातियां थी जो सामाजिक रूप से मुख्यधारा में नहीं थी नाना रूप में निर्योग्यताओं की शिकार थी ,बहुमत प्राप्ति की आकांक्षा में परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों को मुख्यधारा से वंचित जातियों के साथ जुड़ने और उनके साथ चलने को तैयार किया | इस प्रकार से जातियों के बीच बढ़ते राजनीतिक संगठन में सामाजिक दूरियों को कम करने का कार्य किया है |

आज वे जाति समूह जो परंपरागत रूप से हाशिए पर थे खानपान और रहन-सहन संबंधी सामाजिक निर्योग्यता के शिकार थे ,एक साथ सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक आयोजनों में आसानी से देखे जा सकते हैं|

परंतु यहां एक बात और स्पष्ट करना आवश्यक है जाति चेतना राजनीतिक संगठन के साथ राजनीतिक विघटन और क्षेत्रीयतावादी तत्वों को भी बढ़ाने का कार्य करते हुए दिखाई देती है ,जो राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में एक प्रमुख बाधा के रूप में सामने आता है | इसलिए उम्मीद नहीं की जा सकती है आगे बढ़ते समय में जन जागरूकता ,सकारात्मक दलीय प्रणाली, रचनात्मक विपक्ष, सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राजनीतिक दल और दबाव समूह, निष्पक्ष स्वतंत्र और नियतकालिक चुनाव के माध्यम से जाति की नकारात्मक तत्वों को सीमित करने में काफी सफलता हासिल करेंगे |

10.5 शब्दावली

सामाजिक रूपांतरण – यह वह प्रक्रिया है जिसमें समाज में संबंधों के स्वरूप में बदलाव दिखाई देता है | जैसे भारत में परम्परागत रूप से कई निर्योग्यताएं थी जो समय के साथ बदलती हुई दिखाई दे रही है जिसमें सभी जातियों में आपसी आदान प्रदान में वृद्धि हुई है |

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. B. संसदीय शासन प्रणाली २. C रजनी कोठारी

10.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डीफेक्सन

2. जे.सी. जौहरी - रिफलैकसन आफ इंडियन पालिटिक्स

3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति

5.एस. एम सईद – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.बी.एल. फडिया- भारतीय शासन और राजनीति
२.एम.पी.राय, आर .एन. त्रिवेदी – भारतीय सरकार एवं राजनीति

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

भारत में राजनीति पर जाति और जाति पर राजनीति के प्रभावों की विवेचना कीजिए?

इकाई 11 भारत में धर्म-निरपेक्षता

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 पंथनिरपेक्षता: परिचय
11.4 पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व
11.5 पंथनिरपेक्षता के अर्थ
11.6 मौलिक अधिकार में प्रावधान
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबंधात्मक प्रशन

11.1 प्रस्तावना

भारत में संविधान निर्माताओं के लिए, आजादी के लिए संघर्ष के आदर्श मार्गदर्शक रहें हैं | उनमें से बहुत से आदर्शों को संविधान में प्रावधान करके उन्हें भारतीय राजव्यवस्था का अंग बनाया गया है | जिससे यह सदैव देश को उन आदर्शों और लक्ष्यों के प्रति संवेदनशील बनाए रखें और उनकी निरंतर प्राप्ति के लिए प्रयास करें |इण सभी में एक महत्वपूर्ण है पंथनिरपेक्षता |यद्यपि मूल संविधान में इस शब्द का प्रयोग तो नहीं किया गया था परंतु संविधान के बहुत से भागों में पंथनिरपेक्षता का समर्थन और पोषण करने वाले प्रावधान किए गए थे| इन्हीं से संबंधित पक्षों का अध्ययन इस इकाई में किया गया है|

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित विषयों में जानकारी हो सकेगी

1. पंथनिरपेक्षता के अर्थ
2. पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व
3. मौलिक अधिकार में प्रावधान जो पन्थिनर्पेक्षा राज्य की स्थापना में योदान करते हैं

11.3 पंथनिरपेक्षता: परिचय

भारत में आजादी की लड़ाई में भारत के सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोगों ने एकजुट होकर संघर्ष किया है यद्यपि इसके कुछ अपवाद भी है | 15 अगस्त 1947 को आजादी प्राप्त हुई | इसलिए संविधान निर्माताओं के सामने एक बड़ी समस्या थी की इन सभी समुदायों को चाहे वो किसी भी धर्म से हों सबको समान रूप से संरक्षण प्राप्त हो सके | जिससे उनके विकास में धर्म के आधार पर न तो किसी को विशेषाधिकार प्राप्त हो और न ही कोई वंचित रह सके | संविधान निर्माताओं के अनुसार ऐसा केवल पंथनिरपेक्षता को अपनाकर ही किया जा सकता था |इसीलिए संविधान निर्माताओं ने संविधान में इससे संबंधित व्यापक प्रावधान किए हैं | यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है की संविधान में पंथनिरपेक्ष शब्द का उल्लेख नहीं किया गया इस शब्द का प्रावधान भारतीय संविधान में 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया |

11.4 पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता का प्रावधान किया गया है उसका अध्ययन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है –

१.भारत का अपना कोई राजधर्म नहीं है अर्थात किसी धर्म विशेष के प्रभाव में नहीं है | राज्य अपने देशवासियों को धार्मिक अधिकार प्रदान करने में सभी के साथ समान व्यवहार करेगा|

२.इसमें कोई विशेषाधिकार प्राप्त धार्मिक समुदाय नहीं होगा

३.धर्म के आधार पर किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं हुआ

४. लोक नियोजन में अर्थात सरकारी पदों की प्राप्ति में भी राज्य के द्वारा धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा | बल्कि सभी को समान अवसर प्रदान किए जाएंगे |इसका प्रावधान भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है

11.5 पंथनिरपेक्षता के अर्थ

भारत में पंथनिरपेक्षता अंग्रेजी का सेक्यूलर शब्द धर्मनिरपेक्ष के बजाय पंथनिरपेक्ष के अधिक निकटहै | इस संदर्भ में भारतीय परंपरा धर्म का अर्थ धारण करने योग्य अर्थात जो धारण करने योग्य है वही धर्म है |इस अर्थ में धर्म से अलग अपने को नहीं किया जा सकता क्योंकि इस अर्थ में यह एक जीवन शैलीहै | इस अर्थ में धर्मनिरपेक्ष के स्थान पर पहुंचने पंथनिरपेक्ष सेक्यूलर के अधिक निकट है | संविधान निर्माता सांप्रदायिक संघर्ष और अंततः देश के विभाजन से भयभीत होकर देश को एक पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करना चाहते थे | इनके समर्थन में मौलिक अधिकार के भाग में अनुच्छेद 25 से 28 तक महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं |यह प्रावधान सभी धर्म के मानने वालों को समान रूप से धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान करते हैं जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनी है |

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रावधान नहीं किया गया भारत में संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया गया| जिसके माध्यम से पंथनिरपेक्ष शब्द को जोड़ा गया या शामिल किया गया | भारतीय संविधान की प्रस्तावना में विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है किंतु पंथनिरपेक्ष शब्द का उपबंध करके ही इन्हें और स्पष्ट करने का प्रयास किया गया | यद्यपि आलोचक इसके पीछे राजनीतिक कारण बताते है क्यों कि जब सभी नागरिक समान हैं और सभी को समान धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है तो फिर इस शब्द को शामिल करने का औचित्य क्या है |इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है की पंथ निरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है राज्य धर्म विशेष के प्रति कोई आग्रह नहीं है या दुराग्रह नहीं रखेगा |राज्य सभी धर्मों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार करें |सभी को समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा इसके साथ ही

साथ वह स्पष्ट करता है कि देश के सभी नागरिकों को अपनी रूचि के अनुसार धर्म को मानने उसके अनुसार आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता है |

11.6 मौलिक अधिकार में प्रावधान

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता को और स्पष्ट करने के लिए संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मौलिक अधिकारों के रूप में कुछ अनुच्छेद का उल्लेख करना आवश्यक है

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 इस बात की घोषणा करता है कि भारतीय क्षेत्र में सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान होंगे और सभी को कानून का समान संरक्षण प्राप्त होगा |

इसको अधिक व्यापकता से देखते हैं तो स्पष्ट है यह कानून के शासन की स्थापना करता है| जिसमें किसी भी व्यक्ति का कोई विशेषाधिकार नहीं होगा चाहे वह एक साधारण व्यक्ति है या प्रधानमंत्री |सभी एक ही कानून के द्वारा शासित होते हैं |यह स्पष्ट करना आवश्यक है की जब देश के समस्त नागरिक समान है तो ऐसी स्थिति में पूजा पद्धति के आधार पर या संप्रदाय विशेष के आधार पर किसी भी प्रकार के भेद नहीं किया जा सकता है |

इस दृष्टि से संविधान के कुछ अन्य अनुच्छेद का प्रावधान भी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन बहुत पाया जाता रहा है उस विभाजन को कमजोर करने और समरसता को बढ़ाने के लिए अनुच्छेद 15 का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसके अनुसार -राज्य धर्म मूल वंश जाति लिंग जन्म स्थान अथवा इन में से किसी एक के आधार पर किसी नागरिक के साथ कोई भेदभाव नहीं करेगा |इसका तात्पर्य है कि राज्य सभी धर्म के प्रति समान व्यवहार करेगा किसी के साथ धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव का निषेध किया जाता है|

इसी के साथ अनुच्छेद 16 में प्रावधान है की राज्य के अधीन नियोजन में अर्थात सरकारी पदों पर नियुक्ति में सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे अनुच्छेद 16(2)में प्रावधान है कि केवल धर्म मूल वंश जाति लिंग जन्म स्थान निवास अथवा इनमें से किसी आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्य के अधीन पदों पर नियोजन के संबंध में न तो अपात्रता होगी न हीं विभेद किया जाएगा |सामाजिक समरसता की स्थापना में एक और अनुच्छेद है जो भारतीय समाज में मील का पत्थर साबित हो रहा है वह है अनुच्छेद 17 जिसके के अंतर्गत -अस्पृश्यता को समाप्त किया जाता है इसके किसी भी रूप में पालन या प्रोत्साहन को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है |

पंथनिरपेक्षता की दृष्टि भारतीय संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकारों के कुछ अन्य प्रावधान भी बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमें धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है |जिसके

अनुच्छेद 25 से लेकर 28 तक प्रावधान किए गए हैं |अनुच्छेद 25(1) में यह प्रावधान है कि सार्वजनिक व्यवस्था सदाचार स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की क्षमता और धर्म को अवैध रूप से मानने उसके अनुरूप आचरण करने और प्रचार करने की पूरी सफलता है| पंथनिरपेक्षता का इससे बड़ा प्रावधान क्या हो सकता है कि यह अधिकार न केवल नागरिकों को वरन विदेशियों को भी प्राप्त है |

अनुच्छेद 26 में प्रावधान है कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके भाग को धार्मिक प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना ,धार्मिक कार्यों से संबंधित सभी विषयों के प्रबंध का अधिकार है |

अनुच्छेद 27 सभी धर्मों को अपनी धार्मिक गतिविधियों को संचालित और प्रोत्साहित करने का अवसर प्रदान करती है |क्योंकि संविधान निर्माताओं का मानना था कि संविधान में अधिकार का प्रबंध कर देना ही पर्याप्त नहीं है वरन उसके उपयोग की दशाएं भी होनी चाहिए |इस प्रकार अनुच्छेद 27 में यह उपबंध है कि किसी विशेष धर्म की वृद्धि के मामले में कर संदाय की स्वतंत्रता है |इसका तात्पर्य है कि किसी व्यक्ति को ऐसे आय पर कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जो किसी धर्म विशेष या उसके किसी भाग की बिद्धि के लिए के लिए प्रावधान है |इसी प्रकार अनुच्छेद 28 में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो संस्थाओं में धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित हैं जो इस प्रकार हैं

1. राजनीति से पोषित शिक्षण संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी

2. यह बात ऐसे शिक्षण संस्था पर लागू नहीं होती जिसका प्रशासन यद्यपि राज्य करता है परंतु जिसकी स्थापना ऐसे धार्मिक न्यास या अधिकरण के अधीन हुई हो जिसके अनुसार धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है

3. राज्य के राज्य से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक कि उस व्यक्ति ने यदि वह वयस्क नहीं है तो उसके अभिभावक ने अपनी सहमति न दी हो |

डॉ आर. एं. त्रिवेदी और एमपी राय के अनुसार विश्व के अन्य किसी भी संविधान के द्वारा अल्पसंख्यकों को धार्मिक सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार को उस हद तक संवैधानिक संरक्षण नहीं दिया गया है जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 में प्रदान किया गया है |

अनुच्छेद 29 से भारत या उसके किसी भाग के निवासी को अपनी भाषा लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है|

अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य की निधि से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में प्रवेश से किसी नागरिक को केवल धर्म मूल वंश भाषा या इनमें से किसी भी प्रकार के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा|

इसी प्रकार अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उसके प्रशासन के संबंध में अधिकार प्रदान करता है |जो इस प्रकार है धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक को अपनी रूचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा| राज्य शिक्षण संस्थाओं को सहायता देने में धर्म या भाषा के आधार पर भेद नहीं करेगा|

इस प्रकार मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधान भारत को एक पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान करते हैं|

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द किस संवैधानिक संशोधन द्वारा जोड़ा गया?

A. 24वाँ संशोधन B. 42वाँ संशोधन
C. 44वाँ संशोधन D. 52वाँ संशोधन

2. भारतीय संविधान के अनुसार राज्य का अपना धर्म होता है—
सत्य / असत्य

3. धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित प्रावधान संविधान के किस भाग में हैं?

A. भाग-2 B. भाग-3
C. भाग-4 D. भाग-5

4. अनुच्छेद 25 से 28 किससे संबंधित हैं?

A. राजनीतिक अधिकार B. आर्थिक अधिकार
C. धार्मिक स्वतंत्रता D. शैक्षणिक अधिकार

11.7 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना कर्ता है |जहां एक तरफ राज्य को प्रस्तावना में बंधुता और बंधुता बढ़ाने के लिए और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की घोषणा करता है |वही संविधान के अन्य भागों में विशेष रुप से मौलिक अधिकार के भाग में पंथनिरपेक्ष राज्य के समर्थन में अनेक मौलिक अधिकारों का प्रावधान करता

है| इनमें एक तरफ सभी को कानून के समक्ष समान घोषित करते हैं और संविधान की संविधान द्वारा समान संरक्षण प्रदान करने की बात करते हैं ,तो दूसरी तरफ धर्म के आधार पर भी विभेद का निषेध का प्रावधान करते हैं |इसके आगे बढ़ते हुए सरकारी पदों में नियुक्ति के मामले में सभी प्रकार के विवादों को निषेध करते हुए सभी को समान अवसर प्रदान करने के प्रावधान किए गए हैं |और अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28 तक सभी को अपनी रूचि के धर्म को मानने और उसके अनुरूप धार्मिक मामले में प्रबंध की क्षमता प्रदान की गई है | इसको प्रोत्साहन करने के लिए उसके आय को कर से मुक्ति प्रदान करते हैं जो धर्म की वृद्धि के लिए व्यय किया जाता है| इससे भी आगे बढ़ते हुए सभी को अपनी पसंद की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना उसके संचालन के अधिकार के साथ अपनी भाषा लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करते हैं |और इन सभी अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के अनुसार संवैधानिक उपचारों के अधिकार का प्रावधान करते हैं इसके तहत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन होने पर इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में जाने और न्याय पाने का सभी नागरिकों को समान अधिकार है |अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है|

11.8 शब्दावली

1. पंथनिरपेक्षता – वह सिद्धांत जिसके अनुसार राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होता और वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है।

2. धार्मिक स्वतंत्रता – नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धर्म मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार।

3. 42वाँ संविधान संशोधन (1976) – वह संशोधन जिसके द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया।

4. अल्पसंख्यक अधिकार – धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, संस्कृति और शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने का संवैधानिक अधिकार।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. C, 2. असत्य, 3. B , 4. C

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डी.डी. बसु – *भारत का संविधान*

2. एम.पी. जैन – *भारतीय संवैधानिक विधि*

3. ग्रानविल ऑस्टिन – *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सुभाष कश्यप – *Our Constitution*

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता की अवधारणा का अर्थ स्पष्ट करते हुए, उससे संबंधित मौलिक अधिकारों का विवेचन कीजिए।
2. भारतीय समाज की विविधता के संदर्भ में पंथनिरपेक्षता की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 12: नक्सलवाद

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 एतिहासिक पृष्ठभूमि
12.4 हिंसा और संघर्ष
12.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ
12.5.1 पहला चरण
12.5.2 दूसरा चरण
12.5.3 तीसरा चरण
12.5.4 वर्तमान स्थिति
12.6 नक्सली संगठन
12.6.1 पीपल्स वार ग्रुप
12.6.2 माओस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर
12.6.3 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)
12.7 नक्सली विचारधारा
12.7.1 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज
12.8 नक्सली आंदोलन के कारण
12.9 नक्सली आंदोलन कुछ तथ्य
12.10 नक्सल आंदोलन वर्तमान स्थिति
12.11 सारांश
12.12 शब्दावली
12.13 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
12.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.16 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

नक्सल आंदोलन का प्रारम्भ वर्ष 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र से हुआ, जहाँ चारू मजूमदार, कानू सान्याल और जांगल संथाल के नेतृत्व में सशस्त्र किसान संघर्ष के रूप में इसकी शुरुवात हुई। आगे चल कर यह एक सरकार एवं व्यवस्था विरोधी, हिंसात्मक अतिवादी वामपंथी आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। आने वाले दशकों में माओवादी विचारधारा से प्रेरित इस आंदोलन ने भारत के कई राज्यों में अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया जिसे 'लाल गलियारे' के नाम से पहचाना जाने लगा।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में नक्सली हिंसा ने गंभीर रूप धारण किया, किंतु 2010 के पश्चात सुरक्षा बलों की सघन कार्रवाई, आत्मसमर्पण एवं पुनर्वास नीतियों तथा विकासपरक पहल के परिणामस्वरूप इसके प्रभाव क्षेत्र में निरंतर गिरावट आई है।

प्रस्तुत इकाई नक्सल आंदोलन की उत्पत्ति, विस्तार, संगठनात्मक संरचना, वैचारिक आधार और वर्तमान स्थिति का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

- नक्सलवाद का विशलेशण उसके एतिहासिक संदर्भ में को जान पायेंगे।
- नक्सली आंदोलन के चरण, उनका आधार और रणनीति।
- इसके बौद्धिक और राजनीतिक स्वरूप का और नेतृत्व का का अध्ययन।
- नक्सली संगठनों का विशलेशण।
- नक्सली विचारधारा का विस्तार से अध्ययन।
- नक्सली आंदालनों के कारण और उसके स्वरूप का विशलेशण।

12.3 एतिहासिक पृष्ठभूमि

नक्सलवाद शब्द की उत्पत्ति पश्चिमी बंगाल के एक गांव नक्सलबाड़ी से हुई है। यही से एक आंदोलन आरम्भ हुआ जो नक्सलवाद कहलाया। हुआ यह कि कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया

(मार्क्सवादी) से विद्रोह करके चारू मजूमदार, कानू सान्याल तथा जांगल सान्थाल ने 1967 में एक हिंसात्मक विद्रोह छेड़ा। 18 मई 1967 को सिलिगुडी किसान सभा ने जिसका अध्यक्ष जांगल था भूमिहीनों में भूमि वितरण के लिए हथियारबंद संघर्ष का ऐलान किया। उसी सप्ताह एक बटाईदार पर नक्सलबाडी के समीप भूमि स्वामियों के आदमियों ने भूमि विवाद को लेकर हमला कर दिया। 24 मई को जब एक पुलिस टुकडी कृषक नेताओं को गिरफतार करने आयी तो जांगल सन्थाल के नेत्रत्व में आदिवासियों के एक समूह ने घात लगाकर हमला कर दिया। जिसमें तीरों की बौछार से एक पुलिस इंस्पैक्टर और ग्याराह आदिवासी मारे गये। इस घटना से संथाल आदिवासियों और निर्धन लोंगों को स्थानीय भूस्वामियों के विरूद्ध आंदोलित होने का प्रोत्साहन मिल गया। यहां से नक्सलवाद आरम्भ हो गया।

इस तरह नक्सल, नक्सलाईट या नक्सलवादी कम्यूनिस्ट या साम्यवादी लड़ाकू गुटो के लिए एक वंशनीय (जैनेरिक) शब्द है। यह लड़ाकू भारत के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल इत्यादि में माओवादी कहलाते हैं। इनका प्रभाव क्षेत्र केरला, उडीसा और आन्ध्र प्रदेश के जिले भी रहे हैं। नक्सली अति-वाम आतिवादि (रेडीकल) साम्यवादी हैं। जिनके विचारों का आधार माओवादी राजनीतिक भावना और विचारधारा है। यह 1967 में भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) से मतभेद होने के कारण अगल हो गये और इन्होंने भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) बना लिया। पहले इनका आंदोलन पश्चिमी बंगाल तक सीमित रहा, बाद में छत्तीसगढ, उडीसा और मध्यप्रदेश में भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) की सहायता से यह फैल गये।

1967 में नक्सलियों ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्यूनिस्ट रेवोल्यूशनरीज (ऐ0आई0सी0सी0सी0आर0) का गठन किया, लेकिन बाद में सी0पी0एम0 से अलहदा हो गये। देश के अनेक क्षेत्रों में इनके आंदोलन का अधार हिंसा हो गया। व्यवहारिक रूप से सभी नक्सली गुटो का उद्भव सी0पी0आई0 (एम0एल0) से हुआ है। तब दूसरा गुट प्यूपिल्स वार ग्रुप था जो पूरी तरह क्रान्तिकारी था। बाद में इसका विलय भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) में हो गया।

सन 2009 में नक्सली भारत के 20 राज्यों के 180 जिलों मे सक्रीय थे। जिन क्षेत्रों में वे क्रियाशील थे वह रेड कोरीडोर या लाल गलियारा कहलाता था। 92,000 कि0मी0 पर उनका नियंत्रण है। 20,000 हथियार बंद और इतने ही कार्यकर्ता थे । उनकी बढ़ती गतिविधियों को देखते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उनको भारतीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर आंतरिक खतरा बताया था।

आज सरकारी आंकड़ों के हिसाब से नक्सली प्रभाव सिमट कर 20 से भी कम जिलों तक रह गया है और सरकार ने 2026 तक नकसलवाद के अंत का लक्ष्य रखा है।

12.4 हिंसा और संघर्ष

1970 की दहाई में यह आंदोलन अनेक टुकडो में बट गया। 1980 तक यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 30 नक्सली गुट सक्रिय थे। इनकी सदस्यता लगभग 30,000 थी। 2004 गृह विभाग के अनुमान के अनुसार 9,300 ठोस भूमिगत लड़ाकू थे। जिनके पास 6,500 आधुनिक हथियार थे। विदाल हॉल 2006 के अनुसार इस आंदोलन का आधार 15,000 सक्रिय उग्र हथियार बंद थे। ये भारत के जंगलो के एक बड़े भाग (1/5) पर काबिज़ थे। इनकी भूमिका गौरिल्लों जैसी है। 160 जिलों में यह सक्रिय है। रॉ के अनुसार 2006 मे नक्सलियों की संख्या 20,000 थी और यह सब हथियार बंद थे।

कछ नक्सलवादी गुट संसदीय चुनावो में भाग लेते थे जैसे भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लेकिन भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) और भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी जनशक्ति) हथियार गोरिल्ला युद्ध में लिप्त रहे हैं।

6 अप्रैल 2010 नक्सलियों ने नक्सलवादी आंदोलन के इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया। जिसमें 76 सुरक्षाकर्मी मारे गये। यह हमला लगभग 1000 नक्सलियों ने छत्तीसगढ़ के दातेवाड़ा जिले के जंगलो में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के जवानों पर किया। 76 मौतों के अतिरिक्त 50 जवान घायल हुए। 17 मई 2010 को दातेवाड़ा-सुखमा सड़क पर एक बस को उड़ा दिया। जिसमें 15 पुलिसवाले और 20 नागरिक मारे गये अपने तीसरे हमले में जो 29 जून को हुआ, छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के 26 जवानों को मार डाला।

नक्सलवाद का नेतृत्व - जैसा कि लिखा जा चुका हैं नक्सलीय आंदोलन के सबसे प्रभावशाली नेता या गुरू चारू मजूमदार, कानू सानियाल और जांगल संथाल, (कहीं –कहीं जगत संथाल लिखा है) थे। इन नेताओं के नेतृत्व में सी0पी0आई0 (एम0एल0) आंदोलन 1971 में अपने शिखर पर पहुच गया। लगभग 3,650 हिंसात्मक घटनांए घटी जिनसे बिहार, आन्ध्र प्रदेश, केरला , तमिलनाडु, पंजाब और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र हिल उठे। लेकिन जब पुलिस तथा सेना ने शिकंजा जकड़ा जिसमें हजारों नक्सली गिरफ्तार हुए या मर गये तथा 1972 में मजूमदार की मृत्यु से नक्सलवाद को झटका लगा। के0पी0 सिंह ने अपने एक निबन्ध ''दि ट्रेजोक्टरी ऑफ दि मूवमेंट'' में लिखा है: यह काल एक अवधारणात्मक निष्कपट नेतृत्व से सम्पन्न था। इसमें मध्य स्तरीय कार्यकर्ता थे। इसकी

अपील न केवल वामपंथ और समाज के वंचित वर्गो के लिए थी, बल्कि एक बडी संख्या में बुद्धिजीवी और छात्र भी इसकी ओर आकर्षित हुए और सहानुभूति रखने लगे। इसको चीन जैसे कुछ देशों से मदद भी मिल रही थी।

12.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ

12.5.1 पहला चरण

यह कहना सही होगा कि नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति और इस पर पड़ने वाले बाद्धिक प्रभावों का परिणाम है। सर्वप्रथम तेलंगाना संघर्ष के संदर्भ में इसको देखा जाता है। तेलंगना में जुलाई 1948 तक, 2500 गांवो को कम्यून्स में संगठित किया गया। यह किसान आंदोलन का एक हिस्सा था जिसे तेलंगना संर्घश कहा गया। इसी समय प्रसिद्ध आन्ध्राथीसेज अस्तित्व में जिसकी मांग थी कि भारतीय क्रान्ति चीन जन युद्ध के रास्ते पर चलना चाहिए। जून 1948 तक वामपंथी अवधारणात्मक दस्तावेज 'आन्ध्र लेटर' सामने आया। जिसने नवीन लोकतंत्र के आधार पर एक क्रन्तिकारी रणनीति बनाने का आहवान किया।

1964 में सी0पी0एम0 सी0पी0आई0 से अलहदा हो गयी और चुनावों में भाग लेने को फैसला किया और क्रान्तिकारी नीतियों को अपनाने में हथियार बंध संघर्ष स्थगित करने का तब तक के लिए ऐलान किया जब तक कि देश में क्रान्तिकारी परिस्थितियां परिपक्व न हो जायें।

1965-66 में साम्यवादी नेता चारू मजूमदार ने मार्क्स-लेनिन-माओ के विचारों पर आधारित बहुत से लेख लिखे, जिनको बाद में ऐतिहासिक आठ दस्तावेज कहा गया। जो अनंतः नक्सली आदोलन का आधार बना।

इसी दौरान पहला स्वतंत्रता संगठन तेलगु कवि श्री श्री की अध्यक्षता में अस्तित्व में आया। लेकिन भारत-चीन युद्ध के दौरान हजारों साम्यवादियों को जेलो में ठूस दिया गया।

1967 में सी0पी0एम0 ने चुनावों में भाग लिया और बंगाल कांग्रेस के साथ मिलकर पश्चिमी बंगाल में एक संयुक्त मौर्चा बनाया। इससे पार्टी में विरोध की लहर दौड गयी। चारू मजूमदार ने सी0पी0एम0 पर विश्वासघात का आरोप लगाकर पार्टी छोड़दी।

25 मई, 1967 को चारू मजूमदार के नेतृत्व में विद्रोही गुट ने पश्चिमी बंगाल के दार्जलिंग जिले के नक्सलबाडी में किसानों का उग्र आंदोलन आरम्भ हुआ। कारण था कि एक आदिवासी युवक पर

जिसके पास खेत जोतने का न्यायिक आदेश था जमीदार के गुंडो ने हमला कर दिया। आदिवासियों ने बदले में अपनी भूमि को जबरदस्ती छीनना शुरू कर दिया। सी0पी0आई0 (एम) द्वारा समर्थित संयुक्त मोर्चे ने आदिवासियों के आंदोलन को कुचलना शुरू किया। 72 दिनों तक यह विद्रोह चला जिसमें एक पुलिस सब इंस्पेक्टर और 11 आदिवासी मारे गये। केन्द्र में कांग्रेस ने इस दमन का समर्थन किया। घटना की गूंज पूरे देश में हुई और नक्सली आंदोलन ने जन्म ले लिया।

नक्सलवाद की विचारधारा देखते ही देखते भारत में फैलने लगी। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार में लोंगों ने संघर्ष में भाग लेना आरम्भ किया।

आंदोलन का बौद्धिक स्तर भी सामने आया जब ''लिबरेशन'' और देशभक्ति, बंगाली तथा लोकयुद्ध (हिन्दी) जैसी पत्रिकांए सामने आयी।

12.5.2 दूसरा चरण

1967 में तमिलनाडु, केरला, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटका, उडीसा और पश्चिमी बंगाल में कामरेडो ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ रेवोल्यूशनरीज की स्थापना सी0पी0आई0 (एम) के अन्तर्गत की। 14 मई 1968 इसका नाम ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्यूनिस्ट रेवोल्यूशनरीज पडा। इसके संयोजक एस0राय0 चौधरी थे। इस नयी संस्था ने चुनाव के बहिष्कार का आहवान किया। बाद में इस कमेटी मे विभाजन हो गया।

22 अप्रैल 1969 को नई कमेटी के एक निर्णये के अनुसार एक नयी पार्टी बनायी गयी। जिसका नाम सी0पी0आई0 (एम0एल0) पड़ा। लेनिन के विचार इसके प्रेरणा स्त्रोत थे। चारू मजूमदार इस पार्टी के केन्द्रीय दल के सचिव चुने गये 1 मई 1969 को पार्टी के दूसरे बड़े नेता कामरेड कानू सान्याल ने कलकत्ते की शहीद मीनार मैदान में पार्टी की घोषणा के लिए एक बडी मीटिंग की। सी0पी0आई0 (एम) ने इस मीटिंग में गड़ बड़ फैलाने की कोशिश की परिणाम स्वरूप सी0पी0आई0 (एम) और सी0पी0आई0 (एम0एल0) में पहली हिंसात्मक झड़प हुई।

इस बीच देवरा-गोपीवल्लभपुरा (पश्चिमी बंगाल), मूसल (बिहार, लखीमपुरखीरी, (उत्तर प्रदेश) तथा श्रीकाकूलम (आन्ध्र प्रदेश) में गौरिल्ला जोन बन गये।

26-27 मई, 1969 को आंध्र पुलिस ने कामरेड पंचादरी कृष्णामूर्ति और छः अन्य क्रान्तिकारियों को मार डाला। यहां से श्री काकुलम संघर्ष की लहर पूरे आंध्र में फैल गयी। 20 अक्टूबर को माओवादी

साम्यवादी केन्द्र की स्थापना कनहीं चटर्जी के नेतृत्व में हुई जिसने नक्सलवादी आंदोलन को समर्थन दिया।

27 अप्रैल, 1970 को देशभारती प्रकाशन के दफ्तर पर छापा मारा गया। सी0पी0आई0 (एम0एल0) भूमिगत हो गया। 11 मई को पहला सी0पी0आई0 (एम0एल0) की कांग्रेस कलकत्ते में हुई। यह भूमिगत थी। कामरेड, चारू मजूमदार इसके सह सचिव चुने गये। 10 जुलाई को कामरेड बेमपतापु, सत्यनारायण और अदिबतिया कैलासम, जो श्री काकुलम विद्रोह के नेता थे, पुलिस द्वारा मार डाले गये। लेकिन श्री काकूलम का आंदोलन 1975 तक चलता रहा। इस पूरे आंदोलन को साहित्यकारों और कलाकारों का समर्थन मिलता रहा।

दूसरी ओर बांगलादेश युद्ध के दौरान सेना ने पश्चिमी बंगाल में नक्सली आंदोलन को कुचलने का पूरा प्रयास किया। वीर भूमि का विद्रोह आंदोलन की चरम सीमा थी।

जुलाई 1972 मे चारू मजूमदार को कलकत्ते में गिरफतार कर लिया गया और उनकी लाल बाजार थाने की हवालात में 28 जुलाई को मृत्यु हो गयी। क्रान्तिकारी आंदोलन को मजूमदार की मृत्यू से बड़ा धक्का लगा। सी0पी0आई0 (एम0एल) की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी।

संघर्ष का अंत नहीं हुआ। बौद्धिक स्तर पर आंदोलन नहीं रूका। अगस्त 1972 में पुकार राजनीतिक पत्रिका आन्ध्र प्रदेश से निकाली गयी।

1973 में गुरिल्ला संघर्ष फिर आरम्भ हो गया। इस समय यह केन्द्रीय बिहार और तेलंगाना में चला। मार्च में आन्ध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज को श्री श्री के नेतृत्व में स्थापना हुई।

12 अक्टूबर 1974 में आन्ध्र प्रदेश में एक अतिवादी छात्र संघ की स्थापना हुई। आपात काल में यह पुलिस के जुल्म का शिकार हुआ परन्तु इसका अंत नहीं हुआ।

1975 में आपात काल की घोषणा हुई। पुलिस ने मौके का फायदा उठाकर वामपंथी आंदोलन को कुचलने का पूरी तरह प्रयास किया। सितम्बर में सैन्ट्रल ऑर्गनाइजिंग कमेटी ने अपना आंदोलन वापस ले लिया और एक राजनीति के तहत रोड टू रेव्यूलूशन का दस्तावेज प्रस्तुत किया लेकिन भोजपुर और नक्सलबाडी में खूनी संघर्ष जारी रहा।

फरवरी 1977 में आंध्र प्रदेश में क्रान्तिकारियो ने तेलंगाना रीजनल कांफ्रेंस की स्थापना करके करीम नगर और आदिलाबाद किसान आंदोलन के बीज बोए। तय यह भी किया गया कि नयी भर्ती के

लिए राजनीतिक कक्षांए चलायी जांए और टुकड़ियों को हथियार बंद संघर्ष के लिए जंगलो में भेजा जाये।

बाद में यह तय किया गया कि गोरिल्ला कार्यवाही को कुछ सीमित किया जाये और जनआंदोलन आरम्भ किया जाये। परिणाम स्वरूप 7 सितम्बर को प्रसिद्ध जगीतियाल मार्च का आंध्र प्रदेश में आयोजन किया गया। जिसमें हजारों लोंगों ने भाग लिया।

1979 से लेकर 1988 एम0सी0सी0 ने अपना ध्यान बिहार में केन्द्रित किया। बिहार-बंगाल स्पेशल ऐरिया कमेटी स्थापित की गयी।

1980 में कोण्डापली, सीतारमैया ने आध्र प्रदेश में प्यूपिल्स वार ग्रुप की स्थापना की। आरम्भ में उसका लक्ष्य जन आंदोलन खड़ा करना था। यह आंदोलन केन्द्रीय बिहार मे फैल गया।

12.5.3 तीसरा चरण

1981 में पहली राज्यव्यापी रैली बिहार प्रदेश किसान सभा के झण्डे के तले पटना में हुई। इसने राज्य में एक नये राजनीतिक जन आंदोलन का दौर आरम्भ किया। 1985 तक आंदोलन में आसमिया, पिछड़े और दलितो को मिलाने का प्रयास किया गया।आपरेशन ब्लू स्टार के बाद पंजाब के सिक्खों की भावनाओं को देखते हुए उन्हें आंदोलन से जोडने का प्रयास किया गया।

आदिवासियों की स्वायत्ता के लिए प्यूपिल्स डेमोक्रेटिक फ्रन्ट आसाम के करबी आगलंग में अस्तित्व में आया। इसने विधान सभा की पहली सीट जीते।

इस समय दिल्ली में जन संस्कृतिमंच की स्थापना की गयी। उद्देशश्य बौद्धिक विकास था।

1986 में बिहार सरकार ने पी0डब्लू0जी0 और एम0सी0सी0 पर पाबंधी लगा दी।

इसी वर्ष आंदोलन से महिलाओं को जोड़ने का भी प्रयास किया गया और कलकत्ते में राष्ट्रीय महिला अधिवेशन बुलाया गया ताकि क्रान्तिकारी महिलाओं से महिला आंदोलनो को जोड़ा जा सके।

1988 में सी0पी0आई0 (एम0एल) की स्थापना यतेन्द्र कुमार ने की।

नवम्बर 1989 में भू-स्वामियों ने भोजपुर जिले में 12 वामपंथी समर्थको को मार डाला। नवम्बर में ही सी0पी0आई0 केा पहली चुनावी सफलता मिली जब आरा से पहला नक्सली सदस्य संसद पहुचा। आंदोलन का यह एक नया मोड़ था। आई0पी0एफ0 के अन्तर्गत यह चुनाव लड़ा गया था।

1999 में आई0पी0एल0 की पहली अखिल भारतीय रैली दिल्ली में निकली जिसमें लाखों किसानों ने भाग लिया।

1992 में आध्र प्रदेश पी0डब्ल0जी0 पर पाबंदी लगा दी गयी।

1990 में छात्र स्तर पर भी काम किया गया। इलाहबाद में आल इण्डिया स्टूडेन्टस ऐसोसिएशन की स्थापना की गयी। 1993 में ऐसोसिएशन ने इलाहाबाद, वाराणसी और नैनीताल विश्वविद्यालयों के चुनावों में जीत हासिल की। कुछ समय बाद उसका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्र संघ पर भी कब्जा हो गया।

1993 से 1996 तक साम्यवादी संगठनो के बनने और टूटने की कहानी है। इसी दौरान नक्सली आंदोलन दबा रहा।

1999 में नक्सलियों ने हमले तेज कर दिये। लगभग 40 उच्च जाति के लोंगों को मार डाला गया। पी0डी0जी0 के तीन बड़े नेता भी मारे गये। 16 नवम्बर को मध्य प्रदेश के ट्रांसपोर्ट मंत्री लिखीराम कारवे को बदले में मार डाला गया।

2000 में बदले की कार्यवाहियां तेज हो गयी। पी0ड0जी0 ने तेलगुदेशम पार्टी के सांसद सुखेन्द्र रेड्डी का घर उड़ा दिया। फरवरी में मध्यप्रदेश में पुलिस की एक गाडी को उड़ाकर23 पुलिसकर्मियों को मार डाला। इसी माह आन्ध्र प्रदेश में दस लोंगों को मार डाला। प्यूपिल्स गोरिल्ला सेना का निर्माण पुलिस को मारने के लिए किया गया।

2001 में सी0पी0आई (एम0एल0) ने ''नक्सलवादी साहस'' को पुर्नजाग्रित करने का आहवान किया। इसी वर्ष दक्षिणी ऐशिया में नक्सली आंदोलन फैलाने के लिए कोआर्डिनेशनल कमेटी ऑफ माओस्ति पार्टीज एण्ड ऑरगनाइजेशन ऑफ साउथ ऐशिया का पहला अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाया गया।

2002 से लेकर जनवरी 2010 का नक्सली इतिहास पूरी तरह रक्त रंजित है। इसका वर्णन पिछले पन्नों में किया जा चुका है।

12.5.4 वर्तमान स्थिति

पिछले दशक में नक्सल आंदोलन एक नए चरण में प्रवेश कर चुका है, जहाँ यह भौतिक और वैचारिक रूप से कमजोर पड़ रहा है। सुरक्षा बलों ने लगातार अभियान चलाकर नक्सली नेतृत्व और लड़ाकों को निशाना बनाया है, जिससे आंदोलन के ढांचे में भारी कमी आई है। सीपीआई

(माओवादी) के शीर्ष नेता और केंद्रीय समिति के सदस्य अब केवल कुछ गिने-चुने बचे हैं, और संगठन का निर्णय-निर्माण ढांचा बिखरता जा रहा है। सरकार की दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति और सुरक्षा बालों के सतत प्रयासों के कारण माओवाद प्रभावित जिलों की संख्या काफी घट गई है, पिछले दस वर्षों में 'लाल आतंक' वाले जिलों की संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गई है। सरकार ने मार्च 2026 तक नक्सलवाद को पूरी तरह समाप्त करने का लक्ष्य घोषित किया है, जिससे नक्सल-मुक्त भारत की दिशा में अभियान को और तीव्रता मिली है प्रभावित ।ग्रामीण क्षेत्रों में विकास योजनाओं और पुनर्वास नीतियों के कारण जनता का समर्थन भी सरकार की ओर बढ़ रहा है, जिससे नक्सलियों की सामाजिक पकड़ कमजोर हुई है। हालाँकि कुछ संघर्ष और गुटबन्दी अभी भी विद्यमान हैं, परन्तु नक्सल आंदोलन अब पहले जैसा व्यापक और सक्रिय विद्रोही आंदोलन नहीं रहा और इसकी शक्ति पहले के मुकाबले काफी क्षीण हो गई है।

12.6 नक्सली संगठन

12.6.1 पीपल्स वार ग्रुप

1974 तक बंगाल और बिहार में नक्सली आंदोलन पूरी तरह कुचल दिया गया। आपात काल में हजारों नक्सलियों को जेल में डाल दिया गया, उनको भी जिन पर थोड़ा सा संदेह था, पर वे कसूरवार नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि ज्यों ही आपातकाल समाप्त हुआ नक्सली आदोलन ने फिर करवट ली। कोन्डापल्ली सीथारम्मया के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश में एक अराजक प्यूपिल्स वार ग्रुप (पी0वी0जी0) और बिहार में माओस्टि कम्यूनिस्ट सेन्टर तथा यूनिटी आर्गनाइजेशन अस्तित्व में आ गये। पहले तो सी0पी0आई0 (एम0एल0) लिब्रेशन ने संसदीय व्यवस्था में काम करने का इरादा किया। लेकिन बाद में हथियार बंद संघर्ष में कूदने में हिचकिचाहट नहीं की । इन संगठनों को एक विचारात्मक आधार कोन्डापल्ली ने दिया। उसने लिखा ''.....एक देश जहां लोकतांत्रिक संस्थांए कमजोर और संकुचित बुनियादो पर आधारित हो, जहां छोटी विजयों और आंशिक सुधारों को एक बड़े सैनिक बल से प्राप्त किया जाये और बनायें रखा जाये'', वहां हथियारबंद संघर्ष अनिवार्य है। इस तरह पी0डब्लू0जी0 की विचारधारा आज के नक्सलियों की विचारधारा है।

प्यूपिल्स वार ग्रुप का उदय का कारण था सी0पी0आई0 (एम0एल) लिब्रेशन का लोकतांत्रिक चुनावो में भाग लेना। ऐसा लोकतांत्रिक कदम चारू मजूमदार के विचारों के विरूद्ध था। वह चाहता था कि समान्ती सेना के विरूद्ध एक सत्त जन युद्ध हो। राज्य के हमलो का जवाब वैधानिक

सुधारवादी नीतियों से नहीं दिया जा सकता ''ऐसा करना शासकीय वर्ग के चमचों'' में बदलना होगा।

पहले कुछ वर्षो तक पी0डब्लू0जी0 आंध्र प्रदेश तक सीमित रहा जबकि सी0पी0आई0 (एम0एल0) का बिहार पर प्रभाव रहा। 1982 में सी0पी0आई0 (एम0एल0) पार्टी युनिटी अस्तित्व में आ गयी और इस तरह एक आंतरिक संघर्ष का खूनी खेल आरंभ हो गया। अगस्त 1998 में पार्टी यूनिटी और पी0डब्लू0जी0 ने मिलकर यूनाईटेड पार्टी बना ली और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसका शीर्षक था राज्य के विरूद्ध हथियार बंद जन-संघर्ष। लेकिन पार्टी की असफलता ने पी0डब्लू0जी0 को बढने का और मौका दिया। वह आंध्र प्रदेश से निकलकर बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ तक फैल गयी थी।

12.6.2 माओस्टि कम्यूनिस्ट सेन्टर

माओस्टि कम्यूनिस्ट सेन्टर या माओवादी साम्यवादी केन्द्र (एम0सी0सी0) नक्सली आंदोलन का एक दूसरा खोफनाक चहरा रहा। इसका निर्माण दक्षिण देश के रूप मे 1969 में हुआ जिसका लक्ष्य राज्य के अभिकर्ताओं के विरूद्ध हथियार बंद संघर्ष करना था। 2003 में इसका नाम एम0सी0सी0 इण्डिया पडा। एम0सी0सी0 माओत्से तुंग की शपथ लेकर काम करती है, जिसका संदेश था गुरिल्ला जन-युद्ध ताकि ''एक शक्तिशाली जन सेना और अर्धजन सेना का निर्माण हो ताकि ग्रामीणीय स्तर पर एक आत्म निर्भर शक्तिशाली और भरोसेमंद आधार क्षेत्र बन सके, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे शहरी क्षेत्रों की घेराबंदी की जाये, ग्रामीणीय क्षेत्रो को मुक्त कराकर और अंत में शहरों में कब्जा जमाया जाये और इस तरह निर्णायक रूप से प्रतिक्रियावादियों की राज्य शक्ति को नष्ट कर दिया जाये।'' एम0सी0सी0 और पी0डब्लू0जी0 की विचारधारा में कोई विशेषअंतर नहीं है। यदि कोई अंतर है तो वह रहा है कार्यशैली की तीव्रता का। दोनों एक दूसरे से आगे बढने की कोशिश मे लगे रहे है।

12.6.3 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)

2004 की रणनीति से माओवादियों या नक्सलियों के लक्ष्य का पता लगता है। 2004 में देशव्यापी क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना के लिए नक्सली आंदोलन ने एक बड़ी छलांग लगाई। इस वर्ष पी0डब्लू0जी0 और एम0सी0सी0आई0 ने गनपंथी और किशन जी के नेतृत्व में कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (माओवादी) का मिलकर गठन किया। यह संगठनात्मक राजनीति के संघर्ष का

नतीजा था। यहां स्वीकार करना होगा कि नक्सली आंदालन का इतिहास सहमति और विभाजन का इतिहास है जिसका आधार विचारों में टकराव है। सी0पी0आई0 (एम) का मेनीफेस्टो एक समझौते का परिणाम था। इस संगठन का निशाना दो बाते हैं- अनौचित्यपूर्ण कृषि नीतियां और राज्य द्वारा भूमि का पुर्नवितरण और दूसरे वह व्यवस्था जिसे माओवादी अर्ध-उपनिवेशवादी, अर्ध-सामन्ती और महत्वांक्षी नौकर शाही पूंजीवादी व्यवस्था कहते है। सी0पी0आई0 (एम0एल0) का रख रखाव बहुत कुछ सीमा तक सुधारवादी था लेकिन लोंगों ने इसे अस्वीकार कर दिया। आम नक्सली को क्रान्तिकारी और हिंसात्मक तरीको से लक्ष्य की प्राप्ति सरल नज़र आती थी।

पी0डब्लू0जी0 और एम0सी0सी0 के गठजोड़ के बाद सी0पी0आई0 (एम) ने एक ऐसे ठोस क्रान्तिकारी क्षेत्र (काम्पैक्ट रैवोल्यूशनरी जोन सी0आर0जैड0) का नक्शा खीचा जो नेपाल से बिहार होता हुआ छत्तीसगढ़ से आंध्र प्रदेश तक जाता है। इसको लाल गलियारा (रेड़ जोन) का नाम दिया गया है। इसका लक्ष्य था भारत को दो आधे-आधे भागों में बांटना और उन क्षेत्रों पर कब्जा कर लेना जो संसाधनो से सम्पन्न हैं, डा0 रजत कजूर के अनुसार ''यद्यपि नक्सली गुटों के निशाने, लडाई के तरीके, क्षमतांए और इनका चरित्र समय-समय पर बदल है। लेकिन नेतृत्व की विचारधारा अडिग है।''

12.7 नक्सली विचारधारा

जैसा कि लिखा जा चुका हैंकि प्यूपिल्स वार ग्रुप (पी0डब्लू0जी0) की विचारधारा नक्सली विचारधारा का आधार है। जिसका स्रोत चारू मजूमदार के लेख है। इन लेखों का संग्रह करके मजूमदार ने हिस्टॉरिक एट डाक्यूमेंटस का नाम दिया जो नक्सली विचारधारा का आधार बनी। पी0डब्लू0जी0 इसी विचारधारा के अनुसार काम करती रही है। यहां हम पी0डब्लू0जी0 के एक पार्टी अभिलेख (दस्तावेज) 'पार्ट आफ प्यूपिल्स वार इन इण्डिया-आवर टास्क' के एक उद्धढ़ को प्रस्तुत करेंगे जो माओवादियों या नक्सलियों का लक्ष्य, उद्देश्य और रणनीति को उजागर करता है। यह दस्तावेज 1992 में जारी किया गया, जिसका उदाहरण इस प्रकार है। ''हमारे दल के प्रोग्रोम ने यह घोषित किया कि भारत एक लम्बा-चौड़ा, अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है। जिसमें लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है। यह बड़े बुजुआई, बड़े भू-स्वामियों से जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है, शासित होता है। साम्राज्यवाद, सामान्तवाद और नौकरशाह-पूंजीवाद के मध्य गठजोड़ एक तरफ और दूसरी ओर जनता का जनसमूह हमारे देश में मौलिक अर्न्तविरोध है। नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति और कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय

बुजुआईयों की जन लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना, हमारे लोंगों को सभी प्रकार के शोषण और प्रतिक्रियावादी शासकीय वर्गों की तानाशाही से मुक्ति दिलाना और हमारे देश में समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना करना, हमारे दल का अंतिम लक्ष्य हैं हथियार बंद कृषक क्रान्ति के आधार पर जन युद्ध एक मात्र रास्ता है। जन लोकतंत्र को प्राप्त करने का अर्थात हमारे देश में नया लोकतंत्र।''

उक्त अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता हैं वह इस प्रकार है:-

1.नक्सलियों के अनुसार भारत एक अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है।
2.यह बड़े बुर्जुआई और भू-स्वामियों से शासित होता है। जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है।
3.साम्राज्यवाद, सामंतवाद, नौकरशाहों तथा पूंजीपतियों के मध्य गठजोड़ है।
4.दूसरी ओर लोंगों का जन समूह है।
5.नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति के माध्यम से परिवर्तन लाया जा सकता है।
6.लक्ष्य कामगारों, किसानों, मध्य वर्गो और राष्ट्रीय बुर्जआईयों की लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना करना है।
7. समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।
8.हथियार बंद कृषक क्रान्ति पर आधारित जनयुद्ध (प्यूपिल्स वार) लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।
9.यही नये लोकतंत्र की अवधारणा है।

12.7.1 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज

जैसा कि लिखा जा चुका हैंचारूमजूमदार नक्सलियों का सिद्धांतकार था। उसकी विचारधारा उसके द्वारा प्रतिपादित ''ऐतिहासिक आठ दस्वातेजों'' में मिलती है। नक्सली आंदोलन को समझने के लिए इन दस्तावेजों का अध्ययन जरूरी है।

इन दस्तावेजों का सार इस प्रकार है:-

1.चारू मजूमदार का मानना था कि मौजूदा परिस्थितियों में सी0पी0आई0 (एम) ने मार्क्स लेनिन का रास्ता छोड़कर समझौते और समन्वय का रास्ता अपनाया। मजूमदार ने इसे ''संशोधनवाद'' (रिवीज़निज्म) कहा और आहवान किया कि किसानों का आंदोलन संधोधनवाद के विरूद्ध होना चाहिए। मजूमदार के अनुसार मार्क्स वादी प्रतिक्रियावादियों की पंक्ति में आंकड़े हुए है। इन्होंने वर्ग संघर्ष के स्थान पर सहयोग का रास्ता अपनाया है। यह इनका अर्थवाद है। माओं को उद्धत करते हुए उसने लिखा जो ''निष्पक्ष रहते हैं वे अवसरवाद का मार्ग अपनाते है।'' यही संशोधन वादी है।

2.हमने जन लोकतांत्रिक क्रान्ति का प्रोग्राम अपनाया हैंजिसका उद्देश्य किसानों के हित में भूमि सुधार करना है। इसके लिए हम सामन्ती वर्गो से जमीन छीननी होगी और उसे भूमिहीन किसानों और गरीबों में बांटना होगा।

3.बिना बलिदान के कोई संघर्ष नहीं हो सकता। 'माओं ने हमको सिखाया हैंकि जहां सघर्ष हैं वहां बलिदान है। आरंभ में प्रतिक्रियावादियों की ताकत ज्यादा होगी। बाद में वे पराजित हो जायेंगे।'

4.नौकरशाही की भूमिका बड़ी गंदी होती है। यदि कुछ वैधानिक सुधार किये भी जाये और नौकरशाही पर क्रयान्वन को छोड़ दिया जाये तो किसानों को कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा लेनिन का विश्वास था।

5.कृशक क्रान्ति लाने से पूर्व राज्य की शान्ति को नष्ट करना होगा। यह कैसे होगा, इसके लिए मजूमदार ने लिखा ''भू-स्वामियों से हथियार छीनने होंगे, पहले उनके घरों को जलाना होगा। अचानक हमला करके सरकारी हथियारों को छीनना होगा। यही पहला हथियारबंद संघर्ष है।

6.वर्ग विश्लेशण जरूरी हैं। बिना वर्ग विशलेशण के वर्ग संघर्ष नहीं होगा। केवल कमज़ोर किसान-मजदूर क्रान्तिकारी हो सकता है। मध्यवर्ग नहीं हो सकता।

7.हथियार बंद संघर्ष की राजनीति जरूरी है। बन्दूके छीनना इसका एक भाग है। माओं की संस्कृतिक क्रान्ति का यही लक्ष्य था। मजूमदार मिज़ों और नागा के मुक्ति आंदोलन को उचित मानता है।

8.मजूमदार के अनुसार छात्रों और युवकों को आगे लाना चाहिए। उसके बाद किसान आंदोलन चले। ऐसा बिहार और आन्ध्र प्रदेश में हुआ। ''शासन दमन करेगा और हमें दमन का सामना करना होगा।'' सामना सकारात्मक होना चाहिए। सत्याग्रह नकारात्मक है। ट्रेंड संघ तथा कृषक सभांए समझौता करती है।

9.घृणित नौकरशाही और पुलिस पर हमला जरूरी है। रेलवे स्टेशनों, पुलिस स्टेशनों, सरकारी भवनों को मत जलाओ। ट्रेनों, बसों, ट्रकों को मत जलाओ। इनका कोई अपराध नहीं है।

10.साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिवर्तित करो।

11.आधुनिक संशोधन वाद का जिसका अगुआ रूस हैंविरोध करो। राजनीति शक्ति की प्राप्ति की ओर मत भागो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है। कि मजूमदार के विचारों का आधार मार्क्सवादी-लैनिनवादी-माओवादी विचारधारा है। यह नौकरशाही, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों के शासन को उखाड़ फेकने पर बल देता है। इसके स्थान पर प्रोलतारी तानाशाही की स्थापना करना चाहता है। समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।

12.8 नक्सली आंदोलन के कारण

आदिवासियों तथा दलितों का समग्र विकास न होना, भूमिहीन किसानों की बदहाली, भू-स्वामियों द्वारा शोषण, खनिज सम्पदा पर ठेकेदारों और पूंजीपतियों का नियंत्रण पुलिस का जुल्म नक्सली आंदोलन के मुख्य कारण है।

भारत में आदिवासियों की संख्या लगभग 8 प्रतिशत है। यह चार क्षेत्रों-अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड इत्यादि में केन्द्रित है। यह अधिकतर जंगलो और पहाड़ी इलाकों में रहते है। यह जंगल के उत्पादन या कृषि पर निर्भर है। अधिकांश भूमिहीन है। राजपूत, मराठा तथा दूसरे शक्तिशाली वर्गो ने इन्हें अपने क्षेत्र छोड़ने को मजबूर किया है। इनसे जमीने छीनी हैंजो इन्हें इधर-उधर भटकने पर मजबूर करते है। आदिवासी पूरी तरह ऋण में फंसे रहते है। जिसकी वजह से इन्हें बंधुआ मजदूर बनना पडता है।

यही स्थिति भूमिहीन किसानों की है। वे न केवल निर्धन हैंबल्कि ऋण ग्रस्त है। शक्तिशाली भू-स्वामी उनका शोषण करते हैं और उनको बंधुआ मजदूर बना कर रखते है।

बिहार, झारखण्ड, उडीसा, छत्तीसगढ़ इत्यादि क्षेत्र प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। यहां खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में है। खनिज पदार्थो की खानों पर ठेकेदारों का नियंत्रण हैंजिसका लाभ पूंजीपति या केन्द्रीय सराकर उठाती है। स्थानीय लोंगों को इनका कोई लाभ नहीं मिलता। आक्रोश का यह एक बढा कारण है।

पुलिस का अत्याचार जग जाहिर रहा है। पुलिस ठेकेदारों, जमीदारों, ऋणदाताओं और पूंजीपतियों का साथ देती है। भूमिहीन किसानों पर जुल्म ढाती हैंऔर उनकी महिआलों का अपमान करती है।

नौकरशाही लापरवाह रही है। योजनाओं के क्रयान्वन में ढील है। इस तरह भूस्वामी-ठेकेदार-पुलिस-नौकरशाही का गठजोड़ लोंगों को आंदोलित करता है।

12.9 नक्सल आंदोलन कुछ तथ्य

1. नक्सली कौन हैं ?

नक्सलवादी या नक्सली एक ढीला शब्द है जो उन गुटों को परिभाषित करता हैं, जो भूमिहीनो, मजदूरों तथा अन्य जन-जातियों के लिए भू-स्वामियों तथा अन्य के विरूद्ध एक हिंसात्मक संघर्षरत रहे । नक्सलियों का दावा रहा है कि वे वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए दमन और शोषण के

विरूद्ध लड़ाई लड़ रहे है। जब कि लोकतंत्र में विश्वास करने वाले उन्हें आतंकवादी कहते है जो वर्ग संघर्ष के नाम पर लोंगों का दमन कर रहे है और राष्ट्र में असुरक्षा का वातावरण पैदा कर रहे है है |जिससे अंततः विकास कि प्रक्रिया भी बाधित हो रही है |

2. कितने नक्सली गुट हैं?

विभिन्न नामों के अन्तर्गत बहुत से गुट सक्रिय रहे है। भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी लेनिनवादी) एक ऐसा राजनीतिक संगठन हैंजो नक्सलियों की विचारधारा का प्रचार करता है। इण्डिन प्यूपिल्स फ्रन्ट अगुआ अहम भूमिका अदा करता है। प्यूपिल्स वार और माओस्टि कम्यूनिस्ट सेंटर ऐसे संगठन हैंजो हिंसा में लिप्त है। हालांकि हाल के वर्षों में इनकी संख्या में तेज़ी से कमी आई है।

3. वे कहां-कहां सक्रिय हैं?

भारत का वह मध्य भू-भाग जो सब से कम विकसित रहा है, यही नक्सलियों की गतिविधियों का केन्द्र रहा है। यहां वे ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों,विशेषरूप से लम्बे जंगलो में सक्रिय है। उत्तर से दक्षिण तक यह झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र तथा तेलंगाना में और (उत्तर पश्चिम में) आंध्र प्रदेश और पश्चिमी उडीसा तक फैले हुए है। उत्तर प्रदेश के उन क्षेत्रों में जो नेपाल से मिले है, यह सक्रिय नजर आते रहे हैं। एक समय भारत के 126 जिले नकसलवाद से प्रभावित थे आज ये आंकड़ा 11 से 15 जिलों तक आ गया है।

4. वे किसका प्रतिनिधित्व करते है?

नक्सलियों का दावा रहा है कि वे भारत के सबसे कुचले हुए लोंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, विशेषकर वह लोग जिन तक भारत का विकास नहीं पहुचा हैंऔर चुनाव प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिये गये है। आमतौर पर यह आदिवासी, दलित और सब से निर्धन लोग है, जो मात्र कोड़ियों के लिए भूमिहीन मजूदूरों की हैसियत से काम करते है।

5. नक्सली किसे निशाना बनाते है?

विचारात्मक दृष्टि से नक्सलियों का दावा है कि वे उस भारत का विरोध करते है जिस रूप में वह आज अस्तित्व में है। उनका विश्वास है कि भारतीयों को भूख और वंचना से मुक्ति पाना हैंऔर यह कि धनी वर्ग-भू-स्वामी, उद्योगपति, व्यापारी इत्यादि उत्पादन के साधन पर नियंत्रण रखते है। उनका अंतिम लक्ष्य हैंवर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकना, परिणाम स्वरूप राजनीतिज्ञों, पुलिस अधिकारियों, जंगल के ठेकेदारों इत्यादि को वे निशाना बनाते है।

गांवों में नक्सली भू-स्वामियों को निशाना बनाते है । विशेषरूप से उन से पैसा उघाते है। क्योकि वे आदिवासियो और भूमि-हीनों के लिए लडते है, अतः अक्सर वे इनसे टैक्स वसूलते हैं। यह सरकार का शासन कम उनका ज्यादा है।

6. आंदोलन की विचारधारा का आधार क्या हैं?

नक्सली संघर्ष चीन के माओत्से तुंग की विचारधारा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य भारतीय क्रान्ति को जन्म देना है। हिंसा इसका आधार है। आंध्र प्रदेश में यह विचारधारा बहुत मजबूत है।

7. क्या कभी यह आंदोलन लोकप्रिय हुआ ?

1960 और 1970 की दहाइयों में नक्सलवाद लोकप्रिय था।विशेषरूप से इसमें कई बड़े-बड़े कालेजों के मेधावी छात्रों ने भी दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। वे आदिवासियों और भूमिहीनों के अधिकारों की वकालत करते थे। बहुत से बड़े बुद्धिजीविओं का भी इसको समर्थन मिला। सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति भी एक समय इस आंदोलन के साथ थी।

8. क्या नक्सलियों का विरोध होता है?

हां, आंदोलन के पूरे दौर में नक्सलियों को विरोध का समना करना पड़ा है, पडना भी चाहिए | उदाहरण के लिए जून 1960 की दशक में पश्चिमी बंगाल में यह आंदोलन आरम्भ हुआ तो सी0पी0आई0 (एम) ने कांग्रेस की सहायता से माओवादियों पर गहरे आघात किये। लगभग तब इसे कुचल दिया गया। ग्रामीण स्तर पर नक्सलियों की आतंकी हरकतो को जवाब देने के लिए स्थानीय सेनांए लामबंद हुई। जिनको भू-स्वामियों का समर्थन प्राप्त था। इनमें सबसे बदनाम रणवीर सेना बिहार और झारखंड में है। यह भूमिहर भू-स्वामियों द्वारा बनाई गयी थी। इन सेनाओं ने सैकड़ों आदिवासियों, दलितों और भूमिहीन मजदूरों को मार डाला ।

9. इनकी क्या आलोचना होती रही है ?

इनकी आलोचना यह है कि बावजूद अपनी विचारधारा के, वे मात्र एक दूसरे प्रकार के आतंकवादी बन गये है। यह मध्यवर्गीय भू-स्वामियों से धन वसूली करते रहे हैं और सब से बुरा पहलू यह है कि उन आदिवासियों और ग्रामीणों के जीवन को प्रताड़ित और नियंत्रित करते हैं जिनका प्रतिनिधित्व करने का यह दावा करते है। इन पर महिलाओं के शारीरिक शोषण के आरोप लगते रहे हैं।

12.10 नक्सल आंदोलन की वर्तमान स्थिति

नक्सल आंदोलन अब पिछले दशक की तुलना में काफी कमजोर हो गया है क्योंकि केन्द्र और राज्य सरकारों ने मिलकर सुरक्षा बलों को सशक्त कर कठोर अभियान चलाए हैं, जिससे हिंसक घटनाओं और प्रभावित जिलों की संख्या में भारी गिरावट आई है। सुरक्षा बलों की सघन कार्रवाई से शीर्ष

माओवादी नेताओं की मौत और गिरफ्तारियाँ हुई हैं तथा हजारों नक्सली आत्मसमर्पण कर मुख्यधारा में लौटे हैं, जिससे नक्सली संगठनों की मजबूती कम हुई है।

2010 में नकसलवाद से 126 जिले प्रभावित थे, लेकिन अब यह संख्या महज 11–20 जिलों तक सिमट आई है और इनमें भी गंभीर रूप से प्रभावित सिर्फ कुछ ही जिले हैं। समग्र रूप से नक्सल-सम्बंधित हिंसा और सुरक्षा बलों तथा नागरिकों पर हमलों के मामलों में निरंतर गिरावट दर्ज की गई है। सरकार का लक्ष्य - मार्च 2026 तक नक्सलवाद को पूर्णतः समाप्त करना भी आंदोलन की वर्तमान कमजोर स्थिति को दर्शाता है। इस तरह सुरक्षा रणनीति, आत्मसमर्पण व पुनर्वास नीतियाँ, और विकास तथा रोजगार योजनाएँ नक्सल आंदोलन को कमजोर करने में प्रभावी साबित हुई हैं

12 .11 सारांश

नक्सल आंदोलन की शुरुआत 1967 में नक्सलबाड़ी से हुई, जहाँ चारू मजूमदार, कानू सान्याल और जांगल संथाल के नेतृत्व में सशस्त्र किसान विद्रोह हुआ। माओवादी विचारधारा पर आधारित यह आंदोलन धीरे-धीरे भारत के अनेक राज्यों में फैल गया और 'लाल गलियारा' के रूप में जाना गया। विभिन्न चरणों में यह आंदोलन हिंसा और गुरिल्ला युद्ध की रणनीतियों से जुड़ा रहा। आंतरिक सुरक्षा के लिए बड़े खतरे के रूप में उपजे इस आंदोलन का इतिहास रक्तरंजित रहा, किंतु 2010 के बाद सुरक्षा बलों की कठोर कार्रवाई, आत्मसमर्पण नीतियों और विकास योजनाओं के कारण इसका प्रभाव तेजी से घटा। वर्तमान में नक्सल आंदोलन वैचारिक और संगठनात्मक दोनों स्तरों पर कमजोर पड़ चुका है और सरकार ने 2026 तक इसके पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य रखा है।

नक्सल आंदोलन अपने घोषित उद्देश्यों—सामाजिक न्याय और शोषण-मुक्त समाज—को प्राप्त करने में असफल रहा है। हिंसा को साधन बनाकर इसने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को नकारा और आदिवासियों व ग्रामीणों को वास्तविक लाभ पहुँचाने के बजाय उन्हें भय और अस्थिरता के वातावरण में धकेला। वैचारिक जड़ता, आंतरिक विभाजन और जनसमर्थन के क्षरण ने इस आंदोलन को धीरे-धीरे अप्रासंगिक बना दिया है।

अभ्यास प्रश्न

1. नक्सल आंदोलन का प्रारंभ किस वर्ष हुआ?

A. 1957

B. 1967

C. 1964

D. 1971

2. नक्सल आंदोलन का नाम किस स्थान से जुड़ा है?

A. तेलंगाना

B. दार्जिलिंग

C. नक्सलबाड़ी

D. श्रीकाकुलम

3. 'ऐतिहासिक आठ दस्तावेज' किससे संबंधित हैं?

A. कानू सान्याल

B. माओत्से तुंग

C. चारू मजूमदार

D. लेनिन

4. नक्सली विचारधारा का मूल आधार क्या है?

A. माओवादी विचारधारा

B. संसदीय लोकतंत्र

C. गांधीवाद

D. समाज सुधार

12.12 शब्दावली

1. मिलीटेंट :लड़ाकू जो आंदोलन के लिए हिंसा का रास्ता अपनांए

2. रीऐक्शनरी :प्रतिक्रियावादी जो भूमिस्वामी, बुर्जाई, सामन्ती पूंजीवादी है। जो आंदोलन कुचलना चाहते है।

3. रिवीशनिस्ट : संशोधनवादी जो क्रान्तियों को अपनी दृष्टि से परिभाषित करते है, समझोते करते हैं।

4. बुर्जाई :वह वर्ग जो सामन्ती या पूंजीपति है।

12.13 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. B, 2. C, 3.C, 4. A

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

12.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

12.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति का परिणाम है, स्पष्ट कीजिए।

इकाई-13 : भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

इकाई की रुपरेखा
13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास
    13.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य
    13.3.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव
    13.3.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास
13.4 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण
    13.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं
    13.4.1.1 नौकरशाही
    13.4.1.2 पंचायती राज
    13.4.1.3 दलीय व्यवस्था
    13.4.1.4 दबाव गुट
13.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में
13.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास
13.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण
13.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास
13.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत
13.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत
13.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं
    13.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति
    13.11.2 धार्मिक राजनीति
    13.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण
13.12 सारांश
13.13 शब्दावली
13.14 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
13.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.16 सूचीसहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.17 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण को समझने से पूर्व हमें राजनीति आधुनिकीकरण को उसके सामान्य अर्थ में समझना जरूरी है। रॉबर्ट एवर्ट के मतानुसार ''आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया हैं जो संसाधनो के तार्किक उपयोग पर आधारित हैंऔर जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।'' इस अवधारणा को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और संस्कृतिक पहलुओ पर लागू किया जाता है। जब इसे राजनीतिक संदर्भ में लिया जायेगा तो यह 'राजनीतिक आधुनिकीकरण' कहलायेगा परन्तु इसे आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और संस्कृतिक पहलुओ से अलग नहीं किया जा सकता।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

- राजनीतिक आधुनिकीकरण की उसके सामान्य अर्थो और राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का उदय के कारणों को जान पायेंगे।
- आधुनिकीकरण के प्रभावों और परिवर्तनाशीलताओं को समझाने का प्रयास किया गया है।
- आधुनिकीकरण और विकास के सम्बन्धों को भी समझाया गया है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि पारस्परिक विघटन के बाद यद्यपि आधुनिकीकरण होता हैंपरन्तु वह बिखर भी सकता है। आधुनिकीकरण की दुविधाओं पर विस्तार से चर्चा की गयी हैंऔर अंत में यह बताने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का लक्ष्य पवित्र है, यह प्रक्रिया अपरिहार्य है।

13.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

अब सवाल पैदा होता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की विचारधारा क्यों और कैसे अस्तित्व में आयी? एक लम्बे समय तक साम्राज्यवादी देशों ने संसार के अनेक देशो को अपना उपनिवेश बनाये रखा। वह उपनिवेशों का आर्थिक, सामाजिक और संस्कृतिक शोषण करते रहे। राजनीतिक तौर पर

उपनिवेश गुलाम बन गये। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशों में राष्ट्रवाद की लहर दौड़ गयी स्वतंत्रता के लिए संर्घश आरम्भ हो गया हैं और अंततः अनेक ऐशियाई और अफ्रिकी देश आजाद हो गये। इस तरह नये समप्रभुता सम्पन्न राज्य अस्तित्व में आ गये।

अब यहां राजनीति शास्त्रियों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वह इन राज्यों के व्यवहार और उनकी समस्याओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें इसके लिए उन्होने व्यवस्था पद्धति को अपनाया जिसका प्रयोग पश्चिम जगत में निरंतर जारी था। उनका मानना था कि गैर पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियों का अध्ययन पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियाओं की सहायता से किया जाना सम्भव था। उन पर पहले से पश्चिमि जगत की संस्थाओं का प्रभाव था। इस तरह जैम्स कोलमैन ने नाइजीरिया का, लूसियन पाई ने बर्मा का तथा अनेक ब्रिटिश और अमरीकी राजनीति शास्त्रियों ने भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका का अध्ययन किया। इन देशो के आंकड़े एकत्रित किये गये और उनकी सहायता से नवोदित राज्यों के व्यवहार का पता लगाया गया। इन आकड़ो के आधार पर एक सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाना आवश्यक था इसके लिए डेनियल लर्नर, टेलकोट पारसंस, लूसियन पाई, डेविड एफटर, सेमुअल हटिंगटन, रिगस इत्यादि राजनीति शास्त्री सामने आये और अपनी अवधारणांए सामने रखी। लूसियन पाई ने राजनीतिक विकास का संस्कृतिक आयाम में डेविट एप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के संदर्भ में, रिगस ने द्वंद्वात्मक योजना के संदर्भ में और हटिंगटन ने सामाजिक द्वन्द के संदर्भ में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

13.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि विकासशील देशों के लिए आधुनिकीकरण का महत्व क्या है? क्यों पुराना समाज इन तमाम दुविधाओं से गुजरता है? यहॉ हमें यह स्वीकार करना हैंकि आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया हैंजिसे रोका नहीं जा सकता। यह संसार छोटा हो गया है। यातायात और संचार व्यवस्था आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है। कोई समाज इसके प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। गति धीमी या तीव्र हो सकती है। लेकिन पूरी प्रक्रिया की एक उपयोगिता और एक लक्ष्य होता है। आधुनिकीकरण से अनेक राजनीतिक समस्याओं का विश्लेशण किया जा सकता है। आधुनिकीकरण समाज का लक्ष्य निर्धारित करता है और यह भी बताता हैंकि इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यह समाज को एक स्पष्ट दिशा देता हैंऔर आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों को नियंत्रित और संतुलित करता है। परिवर्तन आवश्यगामी है। यह परिवर्तनों की सीमा निश्चित करता है।

आधुनिकीकरण भैागोलिक सीमाओं से परे है। यह कहीं आ सकता है । आधुनिक समाज के कुछ निश्चित लक्ष्य होते है। आधुनिकीकरण उन लक्ष्यों को पाने में मदद करता हैं।

कुल मिलाकर राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत् प्रक्रिया है। यह प्रभावकारी हैंऔर प्रत्येक राज्य और समाज को प्रभावित करती है। इसकी गति को धीमा किया जा सकता है, रोका नहीं जा सकता। नवीनतम उदाहरण यह हैंकि अभी तक कोई सोच नहीं सकता था कि अरब देशों में लोकतंत्र की हवा चलेगी। लेकिन जनवरी 2011 को क्रान्तिकारियों ने तुनेशिया में बेन अली के 23 वर्ष पुराने एकाधिकारी तंत्र को उखाड फेंक कर यह आशा जगाई है कि अरब देशों में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो चली हैं। मिस्त्र में राष्ट्रपति हुसनी मुबारक के विरूद्ध जब क्रान्ति सफल हुई और हुस्नी मुबारक को जाना पड़ा।

13.3.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

राजनीतिक आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है: (1) यह समाज में परमपरागत संरचनाओं की भूमिकाओं को कमजोर करता है। (2) सत्ता में परिवर्तन लाता है। (3) परम्परागत परिवारीय और जातीय सत्तांए एक प्रथम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित होती है। (4) पुराने मूल्यो के स्थान पर नये मूल्य स्वीकार किये जाते है। (5) सरकार के अंग स्पष्ट विभिन्नताओं के साथ सामने आते हैं। (6) जातियों और उपजातियों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में मिलकर महत्व कम हो जाता है।

13.3.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणा को परिभाषित करना बहुत कठिन है लेकिन यह तय हैंकि दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध हैंऔर दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। अगर आधुनिकीकरण का लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना हैंतो हमको पहले आधुनिक समाज को समझना होगा। पाशचात् अर्थ में आधुनिक समाज का अर्थ हैः नगरीयकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा आधुनिक जीवन के लिये यांत्रिकी का प्रयोग। इस तरह परम्परागत समाज का बिखरना और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का पनपना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रराज्य को राजनीतिक सत्ता की अन्तिम इकाई मानना, आधुनिक समाज की पहिचान है। औद्योगिक क्रान्ति ने वास्तव में आधुनिकीकरण की नीव डाली है और यह तैय हैंकि आधुनिकीकरण की हवा को रोकना अब कठिन है। हंटिगटन के अनुसार आधुनिकीकरण एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानवीय विचार

और क्रियाओं के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है। उसकी दृष्टि में नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन लाता है।

विकासशील देशों में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ-साथ चलता हैं। गतिशीलता की ऐसी प्रक्रिया ऐशिया, अफ्रिका और लैटिन अमरीका में स्पष्ट नजर आती है। यहॉ औद्योगिककरण और साक्षरता के कारण नगरीयकरण की प्रक्रिया जारी है। धीरे-धीरे राष्ट्रीय पैदावार बढ रही हैंऔर प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई हैं। लेकिन इन क्षेत्रों के देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी हैंक्योंकि यहॉ राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व की कमी हैंऔर वृहत संचार व्यवस्था के अभाव में जागरूकता कमजोर है। लोकतांत्रिक विचारो की ओर आकृशण कम है। जातीय संघर्षो और गृह युद्धो ने राष्ट्रीय एकीकरण को कमजोर किया है। यह तथ्य राजनीतिक विकास में बाधा है। दूसरे यहॉ राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो पाया हैंऔर नौकरशाही इतनी अक्षम हैंकि मांगो की पूर्ति नहीं कर सकती। (भारत एक अपवाद है) यहॉ यह स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। लेकिन अक्सर ऐसा भी होता हैंकि आर्थिक विकास की गति धीमी हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व अधिक हो (भारत) या फिर आर्थिक विकास की गति तेज हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व कम (अर्जेनटीना) इसलिए आर्थिक विकास की गति बनी रहने के लिये राजनीतिक स्थायित्व एक अनिवार्य शर्त हैं(चीन यद्यपि यहॉ लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है) कुल मिलाकर आधुनिकीकरण के लिए आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थायित्व, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, उदारवादी जनतंत्रीय सोच, एकीकरण की भावना अनिवार्य है। आधुनिकीकरण अवश्यगामी है, पुराने समाजों को इसके तैयार रहना चाहिए।

13.4 भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिकीकरण के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं, उसके मूल्यांकन, विकास से उसके सम्बन्ध, प्रतिमानों के सम्बन्ध में विशलेशण, परिवर्तनशीलता से उसका सम्बन्ध, गतिशीलता और बाधाओं का उस पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

13.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त ऐसी अन्य विशेशतांए हैं जिन्होनें भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र निर्मित किया जाता है। इनमे प्रमुख हैं नौकरशाही की व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत पंचायती राज्य की व्यवस्था, दलीय व्यवस्था और दबाब गुटो का अस्तित्व।

13.4.1.1 नौकरशाही

नौकरशाही देश के प्रशासन में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करती है। विशेषता यह हैंकि जहां प्रशासन की नीति का निर्धारण मंत्रियों द्वारा होता हैंवहां इन नीतियों का क्रयान्वन नौकरशाही या असैनिक सेवा वर्ग द्वारा होता है। नौकरशाही संगठन की संरचना संविधान के अनुसार है। तीन प्रकार की असैनिक सेवायें है। केन्द्रीय, अखिल भारतीय और प्रादेशिक सेवायें । असैनिक सेवा वर्ग को संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है।

असैनिक सेवा वर्ग अपनी क्रयान्वन, वित्तीय और न्यायिक शक्तियों के कारण बहुत शक्तिशाली संस्था मानी जाती है। लेकिन जहां भारतीय नौकरशाही ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सुगम बनाया हैंवहां इसके मार्ग में रोड़े भी अटकाये हैं। अप्रचलित प्रशासकीय व्यवस्था का निर्माण, अप्रचलिक कार्य पद्धति, भ्रष्टाचार और पक्षपात, पारस्परिक संघर्ष, राजनीतिक हस्तक्षेप। परिणाम स्वरूप राजनीतिक प्रशासकीय द्वन्द जातिवाद, साम्प्रदायिक्तावाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, इत्यादि ऐसी बीमारियां हैं जिन्होंने नौकरशाही को राजनीतिक व्यवस्था के लिए अभिशाप बना दिया है।

13.4.1.2 पंचायती राज

राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों ने संवैधानिक आधार पर देश में पंचायती राज्य संस्थाओं के स्पष्ट निर्देश दिये है। यह व्यवस्था स्थानीय शासन का सर्वोत्म उदाहरण हैं। संविधान का अनुच्छेद 40 व्यवस्था देता हैंकि ''राज्य ग्रामीण पंचायतो को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियां प्रदान करेगा जो स्वशासन के कार्य को सुलभ बना सके''।

बलवन्त कमेटी की सिफारिशों के अनुसार व्यवस्था ऐसी होनी थी जो निचले स्तर तक शक्तियों और कार्यो का विकेन्द्रीकरण कर सके। एक ऐसे संगठन की स्थापना करनी थी जो विकास के सारे कार्यो को पूरा करने की क्षमता रखता हो, और सरकार का काम निदेशन देना, निरीक्षण करना, योजना तैयार करना हो और वित्त व्यवस्था करना हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए त्रही-संरचनात्मक ग्रामीण स्थानीय पद्धति को लागू किया गया - अर्थात ग्राम सभा, पंचायत समिति और जिला परिषद। इन

तीनों संरचनाओं में ताल-मेल पैदा किया गया, इनका निर्माण निर्वाचन पद्धति से कराया गया, इनका एक विशेष क्षेत्राधिकार निश्चित किय गया और ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित की गयी।

पंचायती राज्य की एक और विशेषता यह हैंकि इसमें महिलाओं की भागीदरी आरक्षण के माध्यम से सुनिश्चित की गयी।

किस तरह पंचायती राज्य ने भारत की राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दी। यह इस बात से स्पष्ट हैंकि आज देश के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज्य जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत कर रहा हैं। विकेन्द्रीकरण ने सहभागिता को बढावा दिया है, ग्रामीण जीवन सुधारा हैंऔर लोंगों में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता आयी है। पंचायती राज्य ने आधुनिकीकरण में कुछ बाधांए भी उत्पन्न की है। जातिवाद को बढावा मिला है, सामाजिक द्वन्द तेज हुआ है, हिंसा हैंऔर निचले स्तर पर भी भ्रष्टाचार का बोल-बाला है। काफी हद तक यह व्यवस्था धन और बाहुबल पर आधारित है। महिलाओं के नाम पर पुरूषों का वर्चस्व है।

13.4.1.3 दलीय व्यवस्था

किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था का होना अनिवार्य है।विशेषरूप से संसदीय प्रणाली की तो यह रक्त धमिनियां है। यह स्वीकार किया जाता हैंकि दल राजनीतिक आधुनिकीकरण में एक अहम भूमिका अदा करते लेकिन शर्त यह हैं कि इनकी भूमिका सकारात्मक हो। ब्रिटेन और अमेरिका की दलीय व्यवस्था आदर्श मानी जा सकती हैंऔर यद्यपि भारतीय दलीय परम्परा ब्रिटेन की देन हैं परन्तु यह उसके आदर्शो का अनुसरण करने में असफल रही हैं। कारण अनेक है:-

पहला कारण दलो की अंतहीन बढोत्तरी है। ऐसी बढोतरी की मिसाल संसार में कही भी देखने को नहीं मिलती। इस स्थिति ने लोंगों को दुविधा में डाल दिया है। लगभग 100 दल अस्तित्व में हैंजिनमें केवल एक दर्जन का महत्व हैं। 1979 में जनता पार्टी के टूटने के बाद यह स्थिति और गंभीर हुई है। इस स्थिति ने राजनीतिक व्यवस्था पर अनुचित दबाव डाला है। इसमें कांग्रेस (आई0) कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) और भारतीय जनता पार्टी ही मुख्य हैं। चुनाव आयोग के चीफ ऐलाक्शन कमिशनर कुरैशी ने ठीक कहा हैंकि अधिकांश दल पैसा कमाने और छोटे नेताओं की महत्वकांक्षा के कारण अस्तित्व में आते है।

दूसरे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने भी राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डाला है। इन दलो का कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं होता और न ही कोई राजनीतिक विचारधारा या आदर्श। यह दिशाहीन, विचारविहीन दल हैं। शक्ति के भूखो का इन पर नियंत्रण हैं जो क्षेत्रवाद, जातिवाद और साम्प्रदायिक भावनाओं को भडकाकर अपना लक्ष्य साधते हैं। वे विशिष्ट भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय, जातीय और संस्कृतिक समूहो के हितो की रक्षा करते है। उनका प्रभाव एक क्षेत्र तक सीमित रहता है। केन्द्रीय सत्ता हथियाना इनका लक्ष्य नहीं होता परन्तु यह केन्द्रीय सत्ता का साम्य बिगाडने की क्षमता रखते है। यह साम्प्रदायिक भी हैं और अलगाववादी भी । यह दल भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे बडी बाधा हैं क्योंकि इन्होंने सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक द्वन्द को पैदा किय है। इन्होने लोंगों की सोच को संकीर्ण किया है।

तीसरे भारत की पूरी दलीय व्यवस्था जातिवादी और साम्प्रदायिक शक्तियों से नियंत्रित है। वोट बैक की राजनीति, लोकतंत्र को आघात पहुचाया है।

चौथा इन राजनीतिक दलो पर व्यक्तियों का नियंत्रण है। यह एक आदर्श या विचारधारा से नहीं चलती। इन पर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, इच्छाओं इरादों और विचारों का प्रभाव है।

कम्यूनिस्ट पार्टी को छोडकर किसी दल की कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। प्रत्येक दल गांधीवाद, लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रति वचनबद्ध हैंजबकि यह झूठ है। नतीजा यह हैंकि लोंगों में विचारात्मक असामंजस्य की स्थिति बनी रहती है।

दल बदल एक और एक बडी बीमारी है। इस ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का विनाश कर दिया है। यह स्वस्थ राजनीतिक व्यवस्था की पहचान नहीं है। दलीय वफादारी कमी, दलीय व्यवस्था को नष्ट करती है। 52वें संशोघन, 1985 से पूर्व यह स्थिति बडी भयावाह थी।

पांचवे, 1947 से 1977 तक भारत में एक दल का वर्चस्व रहा। इसने एकदलीय शासन व्यवस्था का रूप तैयार किया। इससे एकाधिकार वाद की प्रवृति पनपी और राजनीतिज्ञों को मनमानी करने का मौका मिला। लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का बोल-बाला हुआ। यह स्थिति न केवल केन्द्र में बल्कि बिहार, बंगाल और गुजरात में देखने को मिली।

और अंत में यह कहा जा सकता हैं कि सत्ता के विरोधी दलों ने शासन का सकारात्मक विरोध नहीं किया। विरोधी दल विघटित और भटके हुए रहे। इससे न जन चेतना में कोई वृद्धि हुई और न ही शासन में कोई डर बैठा।

कुल मिलाकर राजनीतिक दलो की भूमिका, उनका आचरण, उनका स्वरूप, उनका चरित्र और उनकी कार्यविधि राजनीतिक आधुनिकीकरण के विरूद्ध रही है ।

13.4.1.4 दबाव गुट

दबाव गुट ऐसे संघ हैंजिनकी उत्पत्ति अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति करने के लिए हुई हैंऔर इन हितो की पूर्ति सरकार पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दबाव डालकर करते है। यह राजनीतिज्ञ दलो से अलहदा है। यह चुनाव में भाग नहीं लेते है। सत्ता प्राप्त करना इनका लक्ष्य नहीं होता। परन्तु यह राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालने में अहम भूमिका अदा करते है।

भारत में दबाव गुटो का विकास धीमा रहा है। स्वतंत्रता के बाद इनका विकास अधिक हुआ है। यह ऐसे समूह हैं जिनकी राजनीतिक दलो के प्रति वफादारियां बदलती रहती है। यह अपने सदस्यों के प्रति वफादार होते हैंऔर इस तरह परम्परावादी और आधुनिक दोनों तत्वों का समावेश होता है। वे आधुनिक तकनीको का प्रयोग करते हैंऔर राजनीतिक दलो की नीतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करके प्रभावित करते है । यह दल देश में अराजकता, हिंसा और अव्यवस्था की स्थिति भी पैदा करते है। इस तरह वे हितो की पूर्ति के लिए परिस्थितियां पैदा करते है।

इन दबाव गुटों में वाणिज्य समूह, मजदूर संघ कृषक समूह, धार्मिक, जातीय, जनजातीय और छात्र संगठक विशेष है।

सच तो यह हैंकि भारत मे दबावों समूहों की भूमिका बहुत सकारात्मक नहीं है। गुर्जर आंदोलन इसका उदाहरण है। आधुनिकीकरण की दृष्टि से इनकी भूमिका विवादास्पद है।

13.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

हमें यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि क्योंकि अभी भारत एक विकासशील देश है। इसलिए यह राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है, इसका अभी आधुनिकीकरण नहीं हुआ हैंऔर न ही इसकी कोई राजनीतिक पद्धति पूर्ण रूप से विकसित हुई है। यहां हम राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्यन का प्रयास करेंगे।

13.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

पहले विस्तार से लिखा जा चुका हैं कि उपनिवेशवाद के अंत के बाद भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। यद्यपि 1858 से भारत इस अवधारणा की ओर अग्रसर होने लगा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने के अवसर पैदा होने लगे थे जेसा 1935 के एक्ट में भी स्पष्ट था। भारतीयों में शासन में भागीदार की इच्छा जाग्रत होने लगी थी जो लूसियन पाई के अनुसार विकास और संस्कृति की अनिवार्य शर्त थी। स्वशासन, स्वाराज्य और स्वतंत्रता की मांग इसके उदाहरण थे। इसके साथ ही जैसा कि ऑरगेन्सकी का मानना हैं भारत में राजनीतिक एकीकरण, औद्योगीकरण , जनकल्याण और संसधनों की बहुलता के भी चिन्ह अंकित होने लगे थे। यह आर्थिक विकास के लिए जरूरी था। भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था के तहत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक गतिशीलता सुनिश्चित हो चली थी।

राजनीतिक दृष्टि से आजादी के बाद भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का रास्ता चुना । पारम्परिक व्यवस्था से निकलकर लोकतंत्र के माध्यम से भारत विकसित होना चाहता था। संविधान की प्रस्तावना इसका प्रतीक है।

कुल मिलाकर जैसी आधुनिकीकरण की परिभाषा है, स्वतंत्रता के बादविशेषरूप से भारत आधुनिक समाज की स्थापना के लिए संसाधनों का तार्किक सदुपयोग करने को तैयार था। जवाहरलाल नेहरू का संसाधनो का सदुपयोगों पर गहरा जोर था। भारी औद्यौगीकरण की संरचना का खाका उन्होने भावी भारतीय समाज के विकास के लिए तैयार किया था।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व राजनीतिक लोकतंत्र करता हैं या सर्वाधिकारी। भारत ने पहली व्यवस्था को अपनाया हैंजबकि चीन और सोवियत संघ ने दूसरा रास्ता अपनाया है।

जैसा कि लिखा जा चुका हैं आधुनिकीकरण के तीन प्रतिमान (मॉडल्स) है: उदारवादी लोकतंत्र, साम्यवादी तंत्र, सर्वाधिकारवाद । प्रत्येक व्यवस्था में अपनी आर्थिक व्यवस्था, मनोवेज्ञानिक दृष्टिकोण और समाजिक संरचना होती है। लेकिन कुल मिलाकर अनके विचारकों के अनुसार आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आर्थिक पैदावार (ग्रोथ) से होता है। आर्थिक पैदावार औद्योगीकरण पर निर्भर है। औद्योगीकरण सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करता है। जब सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आते हैं तब राजनीतिक आधुनिकीकरण होने लगता है।

भारत के संदर्भ में हम देखते हैंकि यहां पारम्परिक सत्ता का ह्रास 1858 से ही आरम्भ हो गया। उसके स्थान परविशेषरूप से स्वतंत्रता के बाद एक एकल, धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता का

उदय हुआ। राजनीतिक व्यवस्था की मांगो को पूरा करने के एक अत्यंत दक्ष केन्द्रीकृत प्रशासकीय सेवावर्ग अस्तित्व मे आया । व्यक्तियों में राजनीतिक व्यवस्था में भागीदरी की भावना बढ़ी। पंचायती राज इसकी एक मिसाल है। नई राजनीतिक संस्थाओं जैसे राजनीतिक दल, हित समूह, सामाजिक आंदोलन अस्तित्व में आये और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अर्न्तसम्बन्धों की भावना बढ़ी। भारत की ओर से गुट निरपेक्षता के आंदोलन का बढावा देना इसका उदाहरण है। नये मूल्य जैसे समाजवाद और मोलिक अधिकारों के विचार पनपे।

भारत में आधुनिकीकरण लगभग दोनो चरणों से होकर गुजरा हैं- ऐतिहासिक और विकासवादी। यह विकास का परिणाम हैंयद्यपि यह पूर्ण नहीं है, सत्त विकास की ओर अग्रसर है। इसके संरचनात्मक और संस्कृतिक प्रतिरूप सामने आने लगे हैंजिनमें अर्न्तता, संस्थाकरण और राष्ट्रीय एकीकरण महत्वपूर्ण हैं।

13.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

पहले बताया जा चुका हैंकि परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट यह चार परिवर्तनशीलतांए हैं जो राजनीतिक आधुनिकीकरण को प्रभावित करती है। भारत में 1857 से ही परम्परा और आधुनिकीकरण का टकराव देखने को मिलता है। धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों के समय यह टकराव तेज हुआ और आज भी खब पंचायतो के निर्णय आधुनिक न्यायपालिका को चुनौती देते नजर आते है। 1857 के बाद परिस्थितियों के अनुसार आधुनिकीकरण में गतीशीलता आयी। जहां तक नेतृत्व का प्रश्न हैंभारत के आधुनिकीकरण में एक अत्यंत कुशल नेतृत्व की भूमिका रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी का और स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारत के निर्माण के लिए जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व बहुत महत्वपूर्ण रहा है। आज भी देश में नेतृत्व की कमी नहीं। भारत को तीसरी शक्ति बनाने में भारतीय नेतृत्व की प्रशंसा करनी होगी। आज भारत मे जो संरचनाऐं और संस्कृति उभरी हैं और एक सक्षम राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आई है, इसमें भारतीय नेतृत्व का कुशल निदेशन तथा मूल्य कारक बने है। अन्त मे वे संकट हैं जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का सामना करते है। इनमें राष्ट्रीय पहिचान, राजनीतिक वैद्यता औ प्रवेश मुख्य है। लोग राजनीतिक व्यवस्था के प्रति वफादार हुए हैंराष्ट्र को उन्होने अपनी पहिचान बनाया है। दूसरी ओर चुनावो के माध्यम से आधुनिक अभिजात वर्ग तथा सत्ता को वैद्यता मिली है। प्रवेश की दृष्टि से एक केन्द्रीकृत शक्ति-संसद अस्तित्व में आई है, अन्तिम सत्ता की एक अन्तिम मानवीय संस्था-कार्यपालिका का उदय हुआ है। वैधानिकता प्रदान करने के लिये एक मानवीय स्त्रोत न्यायपालिका ने

जन्म लिया है। राजनीतिक संचार की व्यवस्था, लोगों की भागीदारी, राजनीतिक दलों का उदय सुनिश्चित हुआ है। संसाधनों का दोहन करके उनका सदुपयोग आरंभ हुआ हैंजिससे आर्थिक विकास में गतिशीलता आई है। परन्तु यह अन्त नहीं है। भारतीय संस्थाऐं एवं संरचनाऐं किसी न किसी में दबाब में रहती है। पर यह कहा जा सकता हैंकि पिछले साठ सालों से इन संरचनाओं ने दबावों का सफल सामना किया है। त्रिशंकु लोक सभा ने किसी न किसी प्रकार से शासन को स्थायित्व दिया है।

13.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण का गहरा सम्बन्ध है। लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना हैंपर आधुनिक समाज क्या है, यह समझना होगा। आधुनिक समाज का अर्थ हैंनगरीयकरण, साक्षरता सामाजिक गतिशीलता और तकनीकीकरण। आधुनिक जीवन की यह अनिवार्य शर्ते है। इसके अतिरिक्त आधुनिकीकरण का अर्थ हैं पारम्परिक समाज का विखरना और सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिपेक्ष दृष्टिकोण अपनाना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रीय राज्य को एकमात्र राजनीतिक इकाई मानना। इस तरह आधुनिकीकरण एक क्रान्ति है। इसे रोक पाना कठिन है।

भारत के संदर्भ में हम देखेगें कि 1947 के बाद से औद्योगीकरण के माध्यम तथा तकनीकी के प्रयोग से शहरो और गांवों का विकास हुआ है। पंच वर्षीय योजनाओं ने इस गति को तेज किया है। तेजी से नगरीयकरण हुआ हैंऔर जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना दर्शाती है। सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण अपनाया गया। समाजवाद सामाजिक समानता लाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्वों ने सामाजिक न्याय को और मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व्यवस्था ने स्वतंत्रता को बढावा दिया है। मूल्यों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन आया है। लगभग सभी राजनीतिक दल समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के प्रति वचनवद्ध है।

13.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

भारत में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ साथ चल रहे है। उदाहरण के लिये औद्योगिकरण ने साक्षरता, नगरीयकरण की दर यदि एक ओर बढाई हैंतो राष्ट्रीय उत्पादन बढा है। और प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है। गत दस वर्षो से इस वृद्धि में गति आई है। साक्षरता लगभग 80 प्रतिशत है, नगरीयकरण में 100 प्रतिशत वृद्धि हुई, राष्ट्रीय उत्पादन 9.2 प्रतिशत बढा है। प्रति व्यक्ति आय 1960-90 की तुलना में चौगनी हो गई है। लेकिन चुनाव राजनीति ने लोकतंत्र के उच्च आदर्श

को नहीं पाया है। दलगत राजनीति, राजनीतिक अपराधीकरण और धन शक्ति ने लोकतंत्र को दबाब में डाल दिया है। नौकरशाही पूरी तरह लालफीताशाही में परिवर्तित हो चुकी है। जनता और सेविवर्ग में दूरियॉ बढ़ी है। इसके बावजूद क्योंकि आर्थिक विकास हो रहा है, राजनीतिक व्यवस्था विखरी नहीं है। साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व ने आर्थिक विकास को गतिशील रखा है। ऐसी कोई उम्मीद नहीं हैं कि भारत का आधुनिकीकरण पाकिस्तान की तरह बिखर जाये। फिर भी भारत मे पूरी तरह से आधुयनिकीकरण आ चुका है, यह कहना अतिश्योक्ति होगा।

भारत में आधुनिकीकरण प्रक्रिया को गतिशील हुए लगभग 60 वर्ष हुए है। अतः हम अभी ब्रिटेन और अमरीका से लगभग 200 वर्ष पीछे है। भारत में पारम्परिक संस्थाऐं अस्तित्व मे है। एक केन्द्रीय परिवार का विाकस नहीं हुआ है। लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की मजबूत नीव पडी है। भारत अमरीका और चीन के बाद एक निश्चित आर्थिक पैदावार के स्तर की ओर बढ रहा है, यद्यपि इसको झटके लगते रहते है। भ्रष्टाचार और हिंसा ने भारतीयों में निराशा को बढावा दिया है। भारत में जन संख्या विस्फोट ने आर्थिक खुशहाली को सीमित किया हैंयद्यपि 1980 के दशक से स्थिति बदली है। शिक्षा के क्षेत्र में देश बहुत आगे बढा है। विशेषरूप से तकनीकी शिक्षा में एक क्रान्ति आई है। फिर भी साक्षरता की दर शत प्रतिशत नहीं हुई है। 99 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैंपरन्तु सीखते कुछ नहीं। परिणामस्वरूप मानवीय शक्ति की बरबादी हो रही है। बेरोजगारी का कारण जन संख्या विस्फोट है। नवयुवक पश्चिमी देशों की ओर भाग रहे है। नगरीयकरण के कारण लगभग सभी औद्योगिक नगरों पर दबाव बढा है। नगर गन्दे हुए है, यातायात के जमाव से संकट पैदा हुआ है। अपराधीकरण बढा हैं और मूल्यों में गिरावट आई है। दिल्ली संसार के सब से गन्दे और असुरक्षित शहरों में से एक है। यह सारी बाते आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दबाव में रखती है।

13.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

जहां तक परम्पराओं का प्रश्न हैं भारतीयों में भी यह दुविधा हैं कि वे किस परम्परा को छोड़े और किस नई संरचना को अपनांए। ग्रामीण जीवन अभी पुराना है। लोंगों को उस से लगाव है। वे नहीं चाते कि महिलांए पढ़े और आगे बढ़े। दूसरा भारत में जो परिवर्त आ रहा हैंवह विकास का पणिाम है। क्रान्तिाकारी परिवर्तनों को लाने में दुविधा है। तीसरे भातरीय जातीय और साम्प्रदायिक वफादारियों से निकलकर धर्मनिरपेक्षता की ओर जाने में असमंजस्य की स्थिति में रहते है। इसलिए भातीयों में गहरी जातीयता और साम्प्रदायिकता की जढ़े मजबूत हैं। राजनीति का धर्मीकरण इसका एक उदाहरण है। राजनीतिक समीकरण जातीय और धार्मिक होते है। चौथे राष्ट्रीय एकीकरण की

समस्या है। भारत में यह स्थिति गंभीर है। जातीय, साम्प्रदायिक और भ्रष्ट शक्तियों ने एकीकरण को कमजोर किया है। भाषा और क्षेत्र इस दिशा में एक बाधा हैंफिर भी यदि राष्ट्रीय एकीकरण की इच्छा हैंतो यह आशाजनक तत्व है। पांचवे भारत में सबसे अच्छी बात यह हैंकि यहां लोकतंत्र को एकाधिकारवाद या साम्यवाद की कोई चुनौती नहीं है। इसलिए भारतीयों में राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को लेकर कोई दुविधा नहीं है। छटे भारत में विचारात्मक जड़ता नहीं है। नवीन विचार अस्तित्व में आते है जैसे धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतांत्रिक उदारवाद, विश्व शांति, सामाजिक न्याय इत्यादि। आधुनिक भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता का विचार विकसित हुआ है। कुल मिलाकर भारत अब आधुनिकीकरण की दुविधाओं की स्थिति से निकल चुका हैंऔर विकास तथा आधुनिकता की ओर अग्रसर है।

13.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण सतत् विकास का परिणाम है। भारत में एक निश्चित राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आने को है। गत65 वर्षो में यदि पूरी तरह आधुनिकीकरण नहीं हुआ हैंतो उसके कारण हैंजो व्यवस्था पर दबाव का काम करते है। संक्षेप में वह दो प्रकार है:-

13.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

यद्यपि संसदीय व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था अनिवार्य हैंपरन्तु दलो की बहूलता औरविशेषरूप से क्षेत्रीय दलो का अस्तित्व आधुनिकीकरण के लिए एक चुनौती है। डी0एम0के0, ऐ0आई0ऐ0डी0एम0के0, तेलगूदेशम, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जनता दल, नेशनल कांफ्रेंस और बहुजन सजाज पार्टी ऐसी राजनीतिक दल हैं जो क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और अलगांववाद की संर्कीण राजनीति चलाकर अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति करते हैं। इनका कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण या विचारधारा नहीं होती। यह राजनीतिक व्यवस्था के लिए संकट पैदा करते हैं। केन्द्रीय सत्ता में सम्मिलित होकर यह विघटन की स्थिति पैदा करते हैं।

क्षेत्रवाद का सम्बंध देश के एक क्षेत्र से होता है। जहां भाषा, संस्कृति और एक विशिष्ट आर्थिक समुदाय की समानुरूपता हैंवहां क्षेत्रवाद पनपता है। यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है। क्षेत्रवाद के समर्थक स्वयं को राष्ट्र से कम क्षेत्र से अधिक जोड़ते है। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी नहीं होता यह क्षेत्रीय स्वतंत्रता के पक्षधर होते हैं। भारत में यह स्थिति बडी गंभीर है।

क्षेत्रीय अनेकता क्षेत्रवाद का कारण हैंयहां लगभग दो दर्जन परिभाषित एक रूप भाषाई क्षेत्र है। इनकी अपनी संस्कृति अपनी ऐतिहासिक परम्परांए है। अनेक अन्य तत्वों ने इनका निर्माण किया है । जिनमें जन्म जातीय, धार्मिक, राजनीतिक और पारम्परिक तत्व है।

भारत में क्षेत्रवाद की अनेक मांगे हैं जिनमें भारतीय संघ से अलग होना, प्रथक राज्य का दर्जा, अर्न्तराज्य में विवाद आदि हैं। तमिलनाडू, नागालैंड, मिजोरम, खालिस्तान और जम्मू-कश्मीर राज्य में ऐसी अलगाववादी मांगे उठी हैं। मेघालय, तिलंगाना, विदरभा, हरित प्रदेश, पूर्वांचल इत्यादि प्रथक राज्यों की मांगे महत्वपूर्ण है। उत्तराखण्ड, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के निर्माण ने प्रथक राज्य की मांग को बढावा दिया है। महाराष्ट्र, मैसूर सीमा विवाद जिसमें आन्ध्रा और कर्नाटक का जल विवाद प्रसिद्ध है। कृष्णा आयोग 2011 ने इस विवाद को हल करने का प्रयास किया है।

एक नया क्षेत्रवाद सामने आया है। जिसका सम्बन्ध आंतरिक प्रवास (माईग्रेशन) से महाराष्ट्र में यह समस्या विकट हैं जहां उत्तर भारतीय प्रवासीयों के विरूद्ध शिवसेना ने एक संगठित आंदोलन छेड रखा है। आसाम में भी यह समस्या विकट है।

यह कहा जा सकता हैंकि पहचान का संकट आर्थिक विकास की विशमता औरं संर्कीण निहित स्वार्थ क्षेत्रवाद को जन्म देते हैंराजनीतिक व्यवस्था के साम्य को बिगाडते है।

13.11.2 धार्मिक राजनीति

धर्मनिरपेक्षता आधुनिकीकरणकी एक अनिवार्य शर्त है। इसका अर्थ हैंएक भौतिक जीवन जो धर्म के बंधनों से मुक्त हो। जहां आस्था सर्वोपरि न हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हैंकि व्यक्ति का कोई निजी धर्म न हो। धर्म निरपेक्ष राजनीति को धर्म से अलहदा करती है। धर्म का विरोध नहीं लेकिन धर्म का सहयोग भी नहीं। यह राज्य का लक्ष्य हैंराज्य धर्म की आजादी देता हैंलेकिन धार्मिक नहीं बनाता। राज्य के सामने सब समान है। कल्याणकारी राज्यधर्म का पौशाक नहीं होता। वह अर्थ व्यवस्था का पौशाक होता है। संविधान ने धर्म निरपेक्षता राज्य की गारंटी दी है।

लेकिन सच हैंकि जहां संविधान की आत्म धर्मनिरपेक्ष हैं वहां व्यवस्था में इस आत्मा को कुचला गया है। स्वयं डा0 राधाकृपा और महात्मा गांधी धर्मपरक राजनीति के पक्षधर थे और आज भारत की पूरी राजनीति किसी न किसी तरह धर्म केन्द्रित है। लगभग सभी धर्म अंधविश्वासों, अतार्किक हठधर्मी और कूरूतियाँसे पीडित है । सब धर्मो के सम्मान का अर्थ हैं कि सारी गंदगी का सम्मान।

राज्य कुरीतियों का निवारण करने में सक्षम नहीं है। धार्मिक पाखंड समानता स्वतंत्रता और भाईचारे को निषेध करता है। सर्वधर्म समाभाव का विचार एक कोरी कल्पना है।

लगभग सभी धर्मो में धार्मिक कट्टरपन और रूढीवाद पनपा है। समान व्यतिक कानून लागू नहीं है। न्यायपालिका आस्था और धर्म के आधार पर निर्णय देती है। यह स्थिति गंभीर है।

राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म का सहारा लेते है। सम्प्रदायिक आधार पर वोट बैंकों की राजनीति राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है। राज्य धर्म का पौशक है। धार्मिक समूहो से गठजोड करता हैंऔर धार्मिक आदेशों (फतवों) का समर्थन करता है।

कुल मिलाकर भारतीय राजनीति व्यवस्था धर्म के दबाव में है, जो आधुनिकीकरण के लिए एक खतरा है।

13.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

सन्थानम ने अपनी रिर्पोट मे लिखा हैं कि भारत पुनः सोने की चिडिया बन सकता है। यदि यहां भ्रष्टाचार न हो सन्थानम को अब से लगभग 30 साल पहले दुःख था कि भारतीय न्याय पालिका जो भ्रष्टाचार का शिकार हो गयी है।

तब 2010 से 2011 में यह स्थिति क्या है। सम्भवतः जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की पकड मजबूत हुई है। जब पैमाने पर घोटोले इस बात का संकेत हैं कि भ्रष्टाचार ने पूरी तरह आर्थिक व्यवस्था को दबा लिया है। सुखना भूमि घोटाला इसका उदाहरण हैं जिसमे जनरल राथ को कोर्ट मार्शल से दण्डित किया गया। अर्थात अब सैना में भी कीटाणू प्रवेश कर गया है। सर्वोच्च न्यायलय द्वारा भ्रष्टाचार पर उच्च न्यायालय को फटकार यह सिद्ध करती हैं कि न्यायपालिका दूषित हो चुकी है। 2-जी स्पैक्ट्रम घोटाला एक और उदाहरण है। कामान्स वेल्थ खेलो में जो घोटाले हुए वह सर्वविधित है। मुम्बई आदर्श भवन का काण्ड सैनिक पदाधिकारियों, बाबुओं और नेताओं के असली चहरे को दर्शाता हैं क्या यह स्थिति भारत को महानतम आर्थिक शक्ति बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है। इसमें संदेह है।

जब आर्थिक व्यवस्था चर्मरोग थी तो राजनीतिक व्यवस्था का साम्य बिगड गया और इस तरह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ठेस पहुचेगी।

कहा जा सकता हैंकि साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, भाषावाद, क्षेत्रवाद भारतीय आधुनिकीकरण की बडी बाधांए है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्न में से किसे राजनीतिक आधुनिकीकरण का बाधक तत्व कहा जा सकता है ?

A. साक्षारता B. भ्रष्टाचार

C. औद्योगिकीकरण D. धर्म निरपेक्षता

2. निम्नलिखित में से किस विद्वान ने राजनीतिक विकास के सांस्कृतिक आयाम पर बल दिया?

A. डेविड एप्टर B. सैमुअल हटिंगटन

C. लूसियन पाई D. टेलकॉट पारसन्स

3. हंटिंगटन के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषताएं कौन-सी हैं?

A. केवल औद्योगिकीकरण और साक्षरता

B. नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण और सामाजिक परिवर्तन

C. केवल राजनीतिक दलों का उदय

D. आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व

13.12 सारांश

संक्षेप में के उक्त भाग में जो तथ्य हमने पढ़े हैं उनमे राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ, यह अवधारणा क्यों और कैसे पनपी, किन राज्यों का राजनीति शास्त्रियों ने अध्ययन किया, कौन से महत्वपूर्ण राजनीति शास्त्री थे जिन्होने आधुनिकीकरण की अवधारणए निर्मित की, जैसे विषयोंकी विवेचना की गई है।

साथ ही आधुनिकीकरण के प्रतिमानों, उसके प्रभावों, परिवर्तन शीलताओं जिनमें परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट सम्मिलित है, का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास का गहरा सम्बन्ध है। दोनो का लक्ष्य आधुनिक समाज की रचना करना है। उन प्रतिमानों या कारकों को स्पष्ट किया गया हैंजो आधुनिक समाज के लिए अनिवार्य हैं। परम्परागत समाज का विखरना और उसके स्थान पर एक धर्म निरपेक्ष, उदारवादी, लोकतांत्रिक

समाज का उदित होना, आधुनिकीकरण की अनिवार्यता हैं । यह कैसे होता है, इस प्रक्रिया को यहॉ समझाया गया हैं।

आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आधुनिकीकरण विखर भी सकता हैं यदि उसकी सरंचनाऐं अक्षम हों।

राजनीतिक व्यवस्था के आधुनिकीकरण में नौकरशाही ने सकरात्मक भूमिका भी निभाई हैंऔर नकारात्मक भी। नौकरशाही एक ऐसा जाल हैंजिसमें जनता और उसके प्रतिनिधि बेबस नजर आते हैं। परन्तु यदि असैनिक सेवा वर्ग अपना उत्तरदायित्व निभाये तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सुगम हो सकती है।

जहां तक पंचायती राज्य का सम्बन्ध हैंइसका लक्ष्य बहुत सुन्दर है। यह भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था प्राण स्त्रोत है। विकेन्द्रीकरण ने जन भागीदारी सुनिश्चित की है। लेकिन पंचायती राज्य ने संघर्ष और द्वन्द को भी बढावा दिया है। यह स्थिति आधुनिकीकरण में एक बाधा है।

दलीय व्यवस्था ने यद्यपि एक ओर भारत की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग दिया हैंवहां उसमें बाधांए भी उत्पन्न की है। अक्सर राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दलो के आचरण के कारण दबाव में आ जाती है। संसद को न चलने देना एक उदाहरण है ।

अंत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान लोंगों में उत्पन्न दुविधाओं की भी समझाया गया है। कुल मिलाकर यह स्वीकार किया गया हैंकि राजनीतिक

13.13 शब्दावली

1. नौकरशाही (ब्यूरियोक्रेसी:एक ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था जिसमें नीतियो के निर्धारण में असैनिक सेवीवर्ग।

2. दबाव गुट: ऐसे समूह जो राज्य भीतर वर्गो के हितो की पूर्ति के लिए शासन पर दबाव डालते है।

3. अभिजात (एलाइटस): सत्ताधारी कुलनी वर्ग

13.14 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1-B, 2-A, 3-B

13.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- S.N.Dubey:Indian Political System.

2- L.Prashad :Indian National Movement &Constitutional Movement.

3- S.N.Dubey:Political Science Theory.

13.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Apter, David : Politics of Modernisation (1965)

2. Pye, Lucian : Political cuture and Political Development (1955)

3. Parsons, Talcott : Social System (1951

13.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक आधुनिकीकरण पर निबंध लिखिए |

इकाई 14 : भारत की राजनीतिक संस्कृति

इकाई की रुपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा
14.4 राजनीतिक संस्कृति के आधार
14.5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व
14.6 राजनीतिक संस्कृति, आधुनिकीकरण और विकास
14.7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति अपनिवेश काल में
14.8 संस्कृतिकरण में सुधार आंदोलनो का योगदान
14.9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आंदोलन
14.10 महात्मा गांधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका
14.11 राजनीतिक संस्कृति के विकास में संवैधानिक विकास का महत्व
14.12 भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरुप
14.13 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता
14.14 भारतीय राजनीतिक संस्कृति और भारतीय संविधान
14.15 जन साधारण की भूमिका
14.16 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति
14.17 सारांश
14.18 शब्दावली
14.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.22 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

राजनीतिक संस्कृति समाज के संदर्भ में राजनीतिक विकास का अध्ययन है। धारणा केवल यह है कि एक राजनीतिक पद्धति का दूसरी राजनीतिक पद्धति से अंतर केवल संरचना के आधार पर नहीं होता, बल्कि राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि से भी होता है। इसे यूं समझिये कि यदि इंगलैण्ड में संसदीय पद्धति सफल हो गयी तो जरूरी नहीं कि भारत या पाकिस्तान में भी सफल हो। कारण राजनीतिक संस्कृतियों की भिन्नता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक राजनीतिक संस्कृति होती हैंजो उस समाज की राजनीतिक व्यवस्था को सार्थकता प्रदान करती है। इतिहास इस संस्कृति का निर्माण करता है।

संस्कृति एक वृहद विचार है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अंग है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के समय से अलग करके समझा नहीं जा सकता । राजनीतिक संस्कृतियों में अंतर होता है। भारत और चीन की राजनीतिक संस्कृति में अंतर है। इतिहास संस्कृति का निर्माण करता है।

लोगों की अभिवृत्तियां (एटीट्यूडस) विश्वास, भावनांए इत्यादि जो राजनीतिक पद्धति से सम्बन्धित हो राजनीतिक संस्कृति कहलाते है। इसका अर्थ यह हुआ कि राजनीतिक संस्कृति के लिए एक शासन या राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए चाहे वह लोकतांत्रक हो या सैनिक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन के लिए क्षेत्र, कृत्य औरी मूल्य अनिवार्य है। यह तीन बाते भावनात्मक पर्यावरण तैयार करती है। राजनीतिक संस्कृति इन्ही को अभिव्यक्त करती है। इसलिए मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है।

सामाजिक संस्कृति के तीन आधार है- ऐतिहासिक भौगोलिक तथा सामाजिक आर्थिक। इसका अर्थ हैंकि इतिहास, भौगोलिक बनावट, सामाजिक मूल्य तथा आर्थिक व्यवस्था राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अहम भूमिका अदा करते है। यह आधार लोंगों को सोच और प्रभाव डालते हैंतथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते है। राजनीतिक संस्कृति स्थिर नहीं है, इसका निरंतर विकास होता रहता है। जब यह परिपकव्वता की ओर पहुचती हैंतो विकास और आधुनिकीकरण पूर्ण हो जाता है। इंगलैण्ड और अमेरिका इसके उदाहरण है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के अपरान्त आप-

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा को पश्चिमी राजनीतिक शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिद्वान्तो के संदर्भ में समझ पायेंगे।
- राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा को
- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति की विवेचना करना है।
- भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण के साथ साथ उनके टकराव पर नजर डाली जायेगी।
- संविधान की दृष्टि से भी संस्कृति की विवेचना करना एक लक्ष्य हैंतथा यह भी देखना हैंकि जन साधारण का रूख भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति कैसा है?

14.3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन अमेरिकी राजनीति शास्त्री उलाम, बियर तथा आमण्ड ने किया है। बाल और पावेल भी इसके समर्थक है। बाल के अनुसार ''समाज की अभिवृत्तियां (एटीट्यूडस), विश्वास, भावनांये और मूल्य जो राजनीतिक पद्धति तथा राजनीतिक मुद्दों से सम्बन्धित होते है, राजनीतिक संस्कृति के अंतर्गत आते है। इस सम्बन्ध में चार बातों को समझना होगा:

1.समाज के लोंगों में एक सामान्य प्रवृति होती है, जैसे भावनात्मक, बैद्विक, नैतिक दृष्टिकोण।

2.सामान्य मानव प्रवृति सामान्य मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों को जन्म देती है।

3.यह मूल्य एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुचतें हैंऔर कुछ संशोधनो के साथ समाज की सामान्य संस्कृति का निर्माण करते है।

4.समाज की इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलुओं का सम्बन्ध शासन के संचालन से होता है। यही पहलू राजनीतिक संस्कृति है। अर्थात अभिवृत्तियां, विश्वास तथा भावनांए राजनीतिक आचरण का निर्माण करके एक संस्कृति को विकसित करती है।

लूसियन पाई ने राजनीतिक संस्कृति में तीन तथ्यों का अध्ययन करने पर बल दिया है-

1.राजनीति का क्षेत्र क्या है?

2.राजनीतिक क्रिया के मापदण्ड क्या है?

3.वे मूल्य क्या हैंजो राजनीतिक क्रिया के लिए अनिवार्य है?

यह कहा जा सकता हैंकि राजनीति संस्कृति भावनात्मक पर्यावरण को अभिव्यक्त करने का साधन हैंइस पर्यावरण के अन्तर्गत कोई राजनीति व्यवस्था कार्य करती है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास और परिस्तिथियां अहम भूमिक अदा करती है। इसलिए किसी समाज की राजनीतिक संस्कृति को उसके इतिहास के संदर्भ में देखना होगा।

सार यह हैं कि राजनीतिक संस्कृति जिनविशेषघटकों पर टिकी होती हैं वे है-मूल्य, विश्वास तथा अभिवृत्तियां, जो लोंगों की एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में होती है। उदाहरण के लिए यदि व्यवस्था लोकतांत्रिक हैं तो लोंगों की अपेक्षांए होती हैंकि चुनाव समय पर और निष्पक्ष हो, विश्वास खो देने पर मंत्री त्यागपत्र दें, संसद ठीक प्रकार से चले, कार्यपालिका उत्तरदायी हो, प्रशासन और शासन चुस्त हो, विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार मिले, प्रत्याशियों को चुनने की स्वतंत्रता हो। एक संवेदनात्मक अभिवृत्ति यह हैं कि विधायकों को संसद में पूरी भद्रता का आचरण करना चाहिए, वे आदर्शो के विपरीत व्यवहार न करें। इसी सोच का नाम राजनीतिक संस्कृति है।

दूसरे शब्दों में इसे यूं समझिये कि जब संसद या कार्यपालिका संवेदनात्मक अभिवृत्तियों के विपरीत कार्य करती है: दलबल होता है, विधिवत निवार्चित सरकार गिरा दी जाती है, भ्रष्टमंत्री अपने पद पर बने रहते हैंतब उनके विरूद्ध जो भांवनाये पैदा होती है, जो जन आक्रोश उमड़ता है, जो आंदोलन खड़े होते हैं जो क्रान्तियां आती हैं, वह सब राजनीतिक व्यवस्था और अभिवृत्तियों की रक्षा के लिए होता है।

14.4 राजनीतिक संस्कृति के आधार

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोंगों के रख रखाव और विश्वास पर कोई राजनीतिक व्यवस्था टिकी होती है। इस संस्कृति के वे तत्व कौन से हैंजिन की यह उपज होती हैंया जो इसके आधार भी बन सकते है, हमें यह देखना होगा। बियर तथा इलाम ने ऐसे तीन आधारों को स्वीकार किया हैः ऐतिहासिक, भौगोलिक तथ सामाजिक-आर्थिक।

किसी समाज में एक राजनीतिक व्यवस्था क्यों बनी रहती हैंऔर क्यों टूटती है, ये इतिहास बताता हैंकारण इस समाज की संस्कृति के गर्भ में खोजे जा सकते है। इतिहास इसमें सहायता करेगा।

उदाहरण के लिए इंगलैण्ड में राजनीतिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से धीरे-धीरे आया। यह राजनीतिक संस्कृति का परिणाम हैंजिनका निर्माण सैकडों वर्षो में हुआ। एडमण्ड बर्क ने इस संस्कृति की प्रशंसा की। दूसरी ओर फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था 1789 में क्रांति के माध्यम से टूट गयी और आगे भी उसके टूटने की संभावना बनी रही। तब तक फ्रांस में जो राजनीतिक संस्कृति पनपी उसका आधार हिंसा था। उसमें संवैधानिक, अहिंसात्मक लोकतंत्रीय मूल्यों के प्रति अविश्वास था। राजनीतिक अवधारणा की दृष्टि से फ्रान्स की क्रांति की आलोचना की गयी। क्योकि वह अधिक टिकाउ नहीं थी। इसके विपरीत अमेरिका और भारत ने इंगलैण्ड का अनुसरण किया, क्योंकि इन देशों को एक ऐतिहासिक आधार मिल गया जो लोकतांत्रिक था।

राजनीतिक संस्कृति का दूसरा आधार है, भोगोलिक परिस्तिथियां और बनावट। इंगलैण्ड को सजातीय बनाने का श्रेय उसकी सीमाओं को है। परिणाम स्वरूप लम्बे समय तक यहां अन्य जातियों के लिए प्रवेश द्वार बंद रहे और वहां वह समस्यांए नहीं आयी जो भारत के सामने आयी। भारत की लम्बी, चौड़ी सीमाओं के कारण यहां पर जाति और धर्म के लोंगों का प्रवेश हुआ और परिणाम स्वरूप भारत एक विजातीय (हैट्रोजीनियस) समाज बन गया। सजातीयता एकता लाती हैंऔर सरल सामान्य राजनीतिक संस्कृति बनती है।

भौगोलिक परिस्तिथियों ने अंतराष्ट्रीय संस्कृति को भी जन्म दिया है। परन्तु इसका आधार भी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति माना जायेगा। प्रभाव क्षेत्रों की राजनीति को निश्चित करने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उसकी भौगोलिक स्थिति को है।

राजनीतिक संस्कृति का तीसरा निर्धारक तत्व सामाजिक आर्थिक स्थिति हैं सामाजिक आर्थिक विकास के दो पहलू हैं- शहरी आद्योगीकरण समाज तथा ग्रामीणकृषकसमाज। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति और विकास पहले रूप की विशेषता है, अनुरूपता और जड़ता दूसरे रूप की। परनतु कुछ समय के पश्चात विज्ञान और तकनीकिकरण का प्रभाव औद्योगिक समाज औरकृषकसमाज दोनो पर तेजी से पडता है। उत्पादन बढता है, यातायात और संचार व्यवस्था विकसित होती है, आयात और निर्यात बढता है, प्रवासन (माइग्रेशन) और उत्प्रवास (इनमीग्रेशन) की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसका प्रभाव क्रांतियों और युद्धो पर पड़ता है।

परिणाम स्वरूप लोगों के राजनीतिक मूल्यों तथा विश्वासों में परिवर्तन आने लगते हैं।कृषकमजदूर बन जाते हैं, मजदूर बोरजुआई बन जाते हैं और साम्राज्यवादी व्यवस्था लागू हो जाती है। इस प्रक्रिया का प्रभाव राजनीति पर पडता हैंऔर नयी राजनीतिक संस्कृति पनपती है।

14.5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक स्थायित्व और परिवर्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।यह लोंगों को सत्ता से जोड़ती है। सत्ता रानीतिक व्यवस्था में स्थायित्व, प्रभावशीलता तथा प्रतिनिधित्वता स्थापित कर सकती है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में लोकतंत्रीय मूल्य लोकतंत्रीय सत्ता का निर्माण करते है। जो राजनीतिक व्यवस्था में गहरा स्थायित्व लाते है, जबकि फ्रांस में केन्द्रीयकरण की व्यवस्था हैंऔर वहां इसकी प्रशंसा होती है। दोनो देशो में अपनी-अपनी राजनीतिक संस्कृति है। यहां यह विश्वास टूट जाता हैंकि केवल लोतांत्रिक या संसदीय व्यवस्था ही अच्छी होती है। सर्वाधिकारवाद भी अच्छा हो सकता है। अगर सत्ता में स्थायित्व पैदा करे। चीन इसका उदाहरण है।

14.6 राजनीतिक संस्कृति आधुनिकीकरण और विकास

राजनीतिक संस्कृति से जुड़ी हुई अगली समस्या हैंराजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास की। यही राजनीतिक परिवर्तन है। परम्परावाद तथा आधुनिकीकरण एक दूसरे के विरोधी है। नेतृत्व और समय समाज को आधुनिकीकरण के ओर ले जाना चाहते है, परम्परावाद मार्ग में बाधांए उत्पन्न करता है।

राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं- अनुदार और प्रगतिशील । अनुदार पहलू क्रांतिकारी परिवर्तन का विरोधी है, जबकि प्रगतिशील पहलू धीरे-धीरे आधुनिकीकरण का हामी है। इसके अन्तर्गत परम्परागत संस्कृति की सजीव बातो को स्वीकार करके उनका मेल नवीन व्यवस्थाओं से कराया जाता है। नेहरू का यही दृष्टिकोण था। यह बदलाव तीसरी दुनिया की विशेषता है।

14.7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति उपनिवेशकाल में

17वीं सदी में अंग्रेज भारत में आये तब यहां मुगलो का राजतंत्रीय शासन था। लोग अधीनस्थ थे और खामौशी से सत्ता को स्वीकार करते थे। अंग्रेजो ने पहले व्यापारियों के रूप मे भारत में अपन प्रभाव जमाया। फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्लासी युद्ध 1757 के बाद भारत पर राजनीतिक अधिकार जमा लिया। एक लम्बे समय तक यहां भी लोग कम्पनी के शासन को सहन करते रहे। उनकी भागीदारी शून्य थी। 1857 में यह धैर्य टूट गया। लोंगों की सोच बदली, कुछ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और इस तरह विद्रोह हो गया। यहां से भारत में राजनीतिक संस्कृति का निर्माण आरम्भ होता है। इस सोच का एक परिणाम यह निकला कि कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत

की सत्ता की बागडोर ब्रिटिश ताज और संसद के हाथो में आ गयी। यहां से सवैंधानिक विकास शुरू हो गया। इसका अर्थ यह नहीं था कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना आरम्भ हो गयी। राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिकारवादी बनी रही।

यह साम्राज्यवाद का काल था। भारत इंगलैण्ड का पूरी तरह से उपनिवेश बन गया। वाणिज्य पूंजी जो कम्पनी की विशेषता थी, औद्योगिक पूंजी में बदल गयी और अन्ततः उसने वित्त पूंजी का रूप ले लिया। सारांश यह हैंकि उपनिवेशवादी दौर मे भारत में एक आर्थिक व्यवस्था पनपी जो औद्योगिकरण का परिणाम थी। 19वीं सदी तक यहां इसका पूरा विकास हो गया। भारतीय घरेलू उद्योग धन्धे चौपट हो गये लेकिन भारतीय सब कुछ सहन करते रहे। फिर भी निराशा और असंतोश गहराया।

आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था भी अंकुरित होने लगी। 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट ने भारत में एक गर्वनर-जनरल, उसकी परिषद और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की। 1784 के एक्ट में दोहरा शासन पूरी तरह अस्तित्व में आ गया। वाणिज्य पूंजी ने भारत को इंग्लैण्ड का एक बाजार बना दिया जो कच्चा माल भी निर्यात करता था। आधुनिक इंग्लैण्ड वास्तव में औद्योगिक पूंजीवाद के कारण भारतीय लूट पर बना। प्रथम युद्ध से पूर्व भारत मेंवित्त पूंजी का दौर रहा। भारत का शोषण पूरी तरह बढ़ गया। असंतोश और गहराया।

14.8 संस्कृतिकरण में सुधार आन्दोलनों का योगदान

जहॉ एक ओर शासन की नीतियों ने राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म दिया, वहॉ धार्मिक और सुधार आन्दोलनों ने इस प्रवृत्ति का विकास किया। यहॉ यह मानना होगा कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में विशिष्ट जातियों की भूमिका का बहुत महत्व होता है। यह व्यक्ति व्यवस्था अथवा इतिहास से प्रभावित होकर जन साधारण की सोच बदलते है। ऐसे व्यक्तियों में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राज राम मोहन राय, सर सय्यद अहमद खॉ इत्यादि आते हैं। आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थ्योसाफीकल सोसायटी भारतीयो को उनके गौरवशाली अतीत की ओर ले जाना चाहती थी। यह वेदों को ज्ञान का स्त्रोत मानते थे।

इन आन्दोलनों ने भारतीय में पश्चिमी जगत के बारे में सोच बदली। वे स्वंय को अब श्वेत पुरूश का भार नहीं मानना चाहते थे। वे अपने भाग्य का फैसला अब स्वंय करना चाहते थे।

इस तरह धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनो ने प्रत्यक्ष रूप से जिस तरह उनकी इच्छाओं, भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं और अभिव्यक्तियों को प्रभावित किया उसने तत्कालीन शासन या सत्ता के प्रति धीरे धीरे एक नकारात्मक रुझान पैदा किया जो उस समय की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में साधक हुआ।

14.9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आन्दोलन

निराशा, हताशा और उदासी का परिणाम 1857 का विद्रोह था। वह पहला स्वाधीनता संग्राम था जो वेरहमी से कुचल दिया गया। सर सय्यद ने ''असबाबे बगावत-ए-हिन्द, में लिखा कि जातीय दंभ और सामाजिक असमानता विद्रोह का कारण थे। विद्रोह के वाद बिटिश संसद का शासन आरंभ हुआ। नीतियॉ बदली। 1858 के एक्ट ने कुछ मरहम लगाया। अतः शिक्षित भारतीयो की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पुनः सोच बदली। ब्रिटिश इण्डिया ऐसोसिऐशन 1851 तथा इण्डियन एसोसियेशन 1876, बंगाल नेशनल लीग 1884 इत्यादि अस्तित्व में आये। इसका लक्ष्य भारतीयों और अंग्रेजो के दृष्टिकोण में ताल मेल बिठाना था।

जैसा कि लिखा जा चुका हैं राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिकाओं और अभिकर्ताओ का बड़ा योगदान होता है। ओ हयूम ऐसे ही अभिकर्ता थे। दादा भाई नैरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने हयूम का साथ दिया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अस्तित्व में आ गई।

कांग्रेस की पहली विचार धारा को उदारवादी माना जाता है। अर्थात शासन के प्रति नरम दृष्टिकोण, ब्रिटिश शासन को एक वरदान मानना, मांगो के लिये संवैधानिक तरीके अपनाना, स्वशासन की मांग करना इत्यादि। इस उदारवाद का कारण था नेतृत्व पर अंग्रेजी या पश्चिमी संस्थाओं, विचारो, मूल्यों, संस्कृतियों का प्रभाव। अतः 1885 से 1900 तक भारतीयों का यही दृष्टिकोण रहा। बाद में कांग्रेस में उग्र विचारधारा पनपी। कारण था शासन की निरंकुशता और उदासीनता, कुप्रशासन, बंगाल का विभाजन और दमन। इस उग्रता ने 1905 में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। स्वतंत्रता की मांग उठी, द्वन्द बढा़ और कांग्रेस का विभाजन हो गया।

उधर मुसलमान आशंकित होने लगे। बहुसंख्यक अल्पसंख्यक मनोवृत्ति पैदा हुई। स्वराज्य आन्दोलन ने इस द्वन्द को तेज किया। परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग अस्तित्व में आ गई। यहॉ से आरम्भ हुई साम्प्रदायिकता की राजनीति और राष्ट्रवादी विचारो का विघटन होने लगा। लार्ड कर्जन और लार्ड मिन्टो इसके लिए जिम्मेदार थे। 1916 तक इस राजनीति का वरचस्व रहा। 1909 के एक्ट

या मारले-मिन्टो सुधारों ने भी इसकी तीव्रता को कम नहीं किया। लेकिन जैसे ही यह महसूस किया गया कि धर्म विभाजन या वर्ग विभाजन का लाभ सत्ता पक्ष उठा रहा है, तब 1916 में लखनऊ पैक्ट अस्तित्व मेंआ गया। उदार अनुदार का मेल औBर हिन्दु मुस्लिम एकता इसका परिणाम था।

14.10 महात्मा गांधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका

हम पहले लिख चुके हैं कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अभिकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। महात्मा गान्धी इस अर्थ में अद्वितीय अभिकर्ता थे। दक्षिण अफ्रिका से लौटकर उन्होने अपनी सत्याग्रह के उपकरण का सफल प्रयोग किया।यह प्रयोग एक भावनात्मक अभिवृत्ति पर टिका हुआ था जिसे गान्धी ने अहिंसा कहा। खिलाफत के संकट और रौलेट एक्ट ने उनके सत्याग्रह के प्रयोग का अवसर दिया। जलियान वाला बाग काण्ड ने समस्या और उग्र कर दी। भारतीयो मे सत्ता के प्रति आक्रोश था। विद्रोह या हिंसक क्रान्ति का वातावरण बना ऐसे मे महात्मा गान्धी के सत्याग्रह के उपकरण ने लोंगों को शान्तिपूर्ण तरंगो की ओर मोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन 1920 इस का परिणाम था। भारतीय अहिंसा के मार्ग पर चल पड़े। यह एक बड़ी क्रान्ति थी। लेकिन चौरी चौरा काण्ड के बाद महात्मा गान्धी ने महसूस किया कि लोग अभी पूरी तरह से अहिंसक नहीं हुये थे, उन्होने आन्दोलन वापस ले लिया। वास्तव में महात्मा गान्धी अहिंसात्मक राजनीतिक संस्कृति के पक्षधर थे। 1930 और 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी इसी संस्कृति की अभिव्यक्ति थे।

गान्धी जी के आन्दोलनो का दूसरा पक्ष यह था कि वह समाज में किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष नहीं चाहते थे। वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एकीकरण और एकता समरसता के पक्षधर थे। 1923 से लेकर 1947 तक उनकी पूरी राजनीति इसी बात पर टिकी रही।

लेकिन हमें एक तथ्य यही भी स्वीकार करना होगा कि भारतीय सामाजिक, धार्मिक और संस्कृतिक अनेकता और द्वन्द से पीड़ित रहे हैं। इसका लाभ सत्ता पक्ष ने उठाया है। भारत का 1923 से 1947 तक का इतिहास द्वन्द और संघर्ष का इतिहास हैंजिसने अन्ततः भारत का विभाजन करा दिया। यद्यपि गान्धीवादी आन्दोलन ने भारतीयों में स्वराज और स्वतंत्रता की चेतना पैदा की और उनमे राष्ट्रीयता की भावना जन्मी लेकिन अखण्ड भारत के रूप में वे एक राष्ट्र की कल्पना को साकार नहीं कर सके। आन्दोलनो का नतीजा केवल यह निकला कि वे अब किसी भी तरह ब्रिटिश शासन को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

14.10 राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में संवैधानिक विकास का महत्व

भारत में संवैधानिक विकास वास्तव में 1858 से आरम्भ होता है। 1857 के विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारतीय एकाधिकारवादी सत्ता को अधिक सहन नहीं कर सकते थे। अंग्रेज भारतीयो की मनोवृत्ति को समझ रहे थे। भारतीय सत्ता में किसी न किसी रूप में भागीदारी चाहते थे। 1858 के अधिनियम ने ताज को सत्ता सौंप दी। एक भारतीय परिषद की स्थापना की गई। दोहरे शासन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। परन्तु स्थिति ज्यों की त्यों रही।

इधर भारत के नवयुवक अंग्रेजी उच्च शिक्षा की ओर आकर्षित हो रहे थे। अंग्रेजी साहित्य, दर्शन, मूल्यों और इतिहास का उन पर प्रभाव पडने लगा था। यद्यपि वे पूरी तरह ब्रिटिश शासन को एक वरदान समझते थे लेकिन भारतीय सत्ता मे वे भागीदारी चाहते थे। उनकी यह सोच इग्लैण्ड से प्रभावित एक नई राजनीतिक संस्कृति को जन्म दे रही थी। इसी नई सोच का नतीजा था 1861 का भारतीय परिषद अधिनियम।

14.11 भारतीय राजनीतिक संस्कृति का वर्तमान स्वरूप

भारत की राजनीतिक संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ पश्चिमी लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो बहस का विषय है। ऐसे विचारकों में माइरन बीवर और मारिस जोंस के नाम उल्लेखनीय है। यहॉ उनके विचारों पर संक्षेप में विचार किया जायेगा।

भारत में स्वतंत्रता के बाद से लोगों का आधुनिकीकृत होना आरम्भ हो गया है। इनका अपना राजनीतिक ज्ञान अपने राजनीतिक विश्वास, अपनी राजनीतिक अभिवृतियॉ, राजनीतिक धारणाऐ, शासन के प्रति दृष्टिकोण इत्यादि हैं। यह राजनीतिक प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भागीदार हैं। इनकी राजनीतिक संस्कृति स्थानीय स्तर से विकसित होकर जिला स्तर की राजनीति और जिले से राज्य स्तर की राजनीति में प्रवेश कर रही है। यह सारी प्रक्रिया कैसे चल रही है, किन चरणों से होकर गुजर रही हैं यह अध्ययन का विषय है।

14.12 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता

भारतीय राजनीतिक संस्कृतियां जटिल और अस्पष्ट है। इनके यर्थात को समझना कठिन है। भारत में सिद्धान्त में और व्यवहार में गहरा अंतर है। इसलिए राजनीति के केवल बाहरी रूप को देखकर वास्तविकता का पता लगाना कठिन है।

दूसरे भारत एक बहुलवादी देश है। यहां संस्कृतियों में गहरी असमान्ता हैंइसलिए राजनीतिक संस्कृतियों मेंभी असमानता और अस्पष्टता है। धार्मिक और भाषाई अंतर राजनीतिक संस्कृतियों को और उलझा देता है। जिसे समझना कठिन है। प्रादेशिक विभिन्नता अपना कार्य करती है। बिहार की और बंगाल की राजनीतिक संस्कृति गुजरात और महाराष्ट्र से भिन्न है। पहली वर्ग संघर्ष पर आधारित हैंतो दूसरी वर्ग सहयोग पर। इसलिए भारतीय राजनीतिक की एक पद्धति खोजना कठिन है।

तीसरे, लोंगों में आचरणों, व्यवहारो, मूल्यों और अभिवृत्तियों में गहरा अंतर है। महाराष्ट्र के लोंगों की सोच और तमिलनाडु के लोंगों की सोच में अंतर है। मॉरिस जोंस ने भारतीय राजनीतिक जीवन के तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जिसको उसने भारतीय राजनीति के तीन मुहावरे कहा है। यह हैंआधुनिक (मार्डन), परम्परावादी (ट्रेडीशनल) और संतवादी (सेन्टली)। अर्थात भारत में तीन विचारो वाले लोग हैं- वे जो पश्चिमी की आधुनिकता से प्रभावित हैं। जो उदार है, धर्मनिरपेक्ष है, समान्ता और स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। देश मेंतकनीकि विकास का वे कारण है। दूसरे वे लोग हैंजो परम्परावादी विचारो के पोशक है। यह जाति भेदभाव पर विश्वास रखते है। स्थानीय हितों को महत्व देते है। तीसरा वर्ग वह हैंजो निर्स्वाथ सेवा और आत्म-बलिदान में विश्वास रखता है। यह नैतिक साधनों को अपनाते है। इनके मूल्य ही आदर्श होते है। यह छिपकर काम करते है। राजनीतिक तौर पर महत्वकांक्षी नहीं होते।

14.13 भारतीय राजनीति संस्कृति और भारतीय संविधान

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भाषा और आचरण का वास्तव में निश्चयकरण भारतीय संविधान ने किया है। अर्थात भारतीय संविधान में निहित आदर्शो और सिद्धान्त भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र का निर्माण करते है। संसदीय भाषा और विचार, उच्च प्रशासकीय पदाधिकारियों का दृष्टिकोण और प्रशासन का स्वरूप, राजनीतिक दलो का संगठन और उनके आचरण की सीमांए और मीडिया या समाचार पत्रों की भाषा आदि तक राजनीतिक संस्कृति का नमूना पेश करते हैं। संविधान ने भारतीयो को विकसित देशों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

उधर संवैधानिक विशेषता के कारण न्यायपालिका की जो व्यवस्था हैंउसने राजनीति को आधुनिक और सुसंस्कृत करने का प्रयास किया है। न्यायपालिका की सक्रीयता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र मे देखने को मिलती है। वास्तव में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करके राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करता है।

राज्य की नीति के निदेशक तत्व भारतीय संविधान की मूल भावना-लोकतंत्र, सामाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपदान करवाते है। यह समानता की अवधारणा को साकार करते हैं।

संघात्मकता ने भारतीय राजनीति को विकेन्द्रीकृत किया है। वास्तव में संघात्मकता ने देश की विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के मध्य एक ताल-मेल पैदा किया है। जिस से उत्तरदायित्व और समरसता की भावना बढ़ी है।

14.14 जनसाधारण की भूमिका

यहां जनसाधारण से अर्थ आम भारतीयों की आशाओं, उपेक्षाओं, संवेदनाओं, दृष्टिकोणों और अभिवृत्तियों से है। अर्थात सम्पूर्ण रानीतिक व्यवस्था के बारे मे वे क्या सोचते हैं और कैसा आचरण करते हैं। उदाहरण के लिये लोंगों का यह विचार हैं कि उनके नेता भ्रष्ट है, लापरवाह हैं और अक्षम हैं, सरकारो में शासनीयता (गर्वनेंस) का आभाव हैं(जैसा कि 15 जनवरी 2011 को भारत के लगभग 20 प्रतिष्ठित उद्योग पतियों ने शासन की उदासीनता के सम्बन्ध में मंत्रियों को पत्र लिखा) सत्ताधारी जनता का पैसा लूटते हैं, करोड़ो रू0 के हार पहनते हैं और केवल अपने वर्ग को समर्पित हैं। अथवा लोंगों की यह सोच कि नेता असुसंस्कृत, अशिक्षित और अपराधी है। संसद में उनका आचरण अशोभनीय और उनकी भाषा गैर संसदीय है। यह कि राजनीतिक दलो का आचरण, उनके हथकण्डे, उनकी तकनीकि लोकतंत्र के लिए एक खतरा हैंया उनका यह दृष्टिकोण कि उनका नेतृत्व माफियाओं, जमाखोरो, तस्करो इत्यादि के चंगुल में हैं। आम भारतीय की राजनीतिक संस्कृति को दर्शाता है। यह वह संस्कृति हैं जिसमें निराशा हैंऔर हताशा है।

परन्तु आम भारतीय संविधान और नयायपालिका की सक्षमता ओर सूचना के अधिकार की उपयोगिता को स्वीकार करते है। इसलिए उनका मानना हैंकि भारत कमियों के बाद भी एक मजबूत शासन व्यवस्था वाला देश है। इसमें आघातो और दबावो का सामना करने की क्षमता है। इस तथ्य ने भारतीय राजनीतिक संस्कृति को सहभागीदारी का रूप दिया है।

14.15 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति

अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति भारतीय राजनीति की विवेचना से राजनीतिक संस्कृति के अवधारणात्मक संदर्भ में कुछ सामान्य तथ्य सामने आते है। जो इस प्रकार हैं-

1.राजनीतिक पद्धति और मुद्दों से सम्बन्धित भारतीयों की अपनी अभिवृत्तियां है। उनमें कही न कही सामान्यता है। जैसे राष्ट्रीयता की भावना।

2.भारत में एक भावनात्मक पर्यायवरण है, जो राजनीतिक संस्कृति को निश्चित करता है। जैसे लोकतंत्र के प्रति आस्था।

3.भारतीय राजनीतिक संस्कृति के तीनों आधार हैं-ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक। इस कारण यहां द्वन्द भी हैंऔर समरसता भी।

4.भारत में समय बदलने के साथ मूल्य और विश्वास भी बदले हैं। लोग राजनीति का अर्थ समझने लगे है। अर्थात राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण हुआ है।

5.भारतीय राजनीतिक संस्कृति ने बाधाओं के बाद भी राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व दिया है। संसार भारतीय लोकतंत्र की प्रशंसा करता है।

6.राजनीतिक संस्कृति ने यद्यपि कही ने कही आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर है।

7.भारतीय राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र, साम्राज्यवाद उदारवाद और धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा पर टिकी है। इसमें गांधीवादी विचारों का समावेश है।

8.भारतीय राजनीतिक संस्कृति में भागीदारो और अधीनस्थों की भूमिका है। इनमें भूमिकांए भी हैंऔर अभिकर्ता भी।

संक्षेप में अवधारणात्मक दृष्टि से भारत में एक राजनीतिक संस्कृति पनपी हैंयद्यपि वह जटिल है।

अभ्यास प्रश्न

1. राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन किन अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिकों ने किया?

A. डेविड ईस्टन और कार्ल डॉयच B. उलाम, बियर और आमण्ड

C. मैक्स वेबर और पार्सन्स D. हंटिंगटन और पाई

2. बाल (Ball) के अनुसार राजनीतिक संस्कृति में मुख्यतः क्या शामिल है?

A. केवल राजनीतिक संस्थाएँ B. केवल संविधान और कानून

C. समाज की अभिवृत्तियाँ, विश्वास, भावनाएँ और मूल्य D. केवल राजनीतिक दल

3. बियर और इलाम के अनुसार राजनीतिक संस्कृति के आधार कौन-कौन से हैं?

A. आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक B. सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक

C. ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक D. संवैधानिक, कानूनी और प्रशासनिक

4. भारत में अहिंसात्मक राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख प्रवर्तक कौन थे?

A. महात्मा गांधी

B. सुभाष चंद्र बोस

C. जवाहर लाल नेहरू

D. डॉ. भीमराव अंबेडकर

14.16 सारांश

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में बहुत योगदान दिया है। इसने एक ऐसा उपकरण प्रदान किया हैंजो राजनीतिक विज्ञान की सूक्षक-वृहद (माइक्रो-मैक्रो) खाई को पाटने में सफल है । इस अवधारणा से सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाना सम्भव हुआ है। राजनीतिक शास्त्री अब सामाजिक और संस्कृतिक शक्तियों का अध्ययन करके राजनीतिक संस्कृति को पहिचानेगा। यहां व्यक्ति की तार्किक और अतार्किक सभी बातो का अध्ययन किया जायेगा। परन्तु इसका अनुदार और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण राजनीतिक संस्कृति को उलझा देता है। यह अवधारणा अस्पष्ट और भटकी हुई है।

भारतीयों की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में उपनिवेश्वादी व्यवस्था, राजनीतिक एकाधिकारवाद, जातीय दंभ और असमानता, अन्याय और दमन का बड़ा हाथ है। 1857 के विद्रोह से लेकर 1886 तक की कहानी यही है। 1885 में कांग्रेस के रूप में उदारवादी और 1900 में इसी दल में उग्रवादी चेतना ने राजनीतिक संस्कृति को पनपने में बड़ा योगदान दिया। बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप 1905 की राजनीति ने देश में उग्र राष्ट्रवाद केा जन्म दिया। लेकिन गान्धीवादी आन्दोलनो ने भारतीयों को शान्तिमय तंरगों की ओर मोड़ दिया। यह एक अद्वितीय अनुभव था। 1923 के बाद से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता ने खुलकर खेल खेला। जिसका परिणाम भारत के विभाजन के रूप में निकला।

राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी और इसके प्रति जागरूकता राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण (सैक्यूलराइजेशन) है। राजनीतिक संस्कृति के लौकिकीकरण से राजनीतिक स्थायित्व आता है। राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है। राजनीतिक

विकास के दो पहलू हैं-अनुदार और प्रगतिशील। पहला क्रान्ति का विरोधी हैंदूसरा विकास का समर्थक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन में विचारधारा का बहुत महत्व है। विचारधारा राजनीतिक मूल्यो के प्रति लोंगों के आचरण का निर्माण करती है। विचारधारा कठोर और लचीले दो रूप की है। विचाराधारा विकासवादी परिवर्तन और क्रान्ति दोनो का कारण बन सकती है।

राजनीतिक संस्कृति के अन्तर्गत राजनीतिक पद्धति के अध्ययन में परिवारों, भीडो, मतदाताओं, गुटो शक्तियों तथा प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक संस्कृति के दो भाग है- सक्रीय और निष्क्रिय । राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संरचना एक दूसरे को प्रभावित करते है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था भूमिकाओं की एक संरचना है। इसमें भागीदार अभिकर्ता है। राजनीतिक संस्कृति को चार भागो में बांटा जा सकता है। संर्कीण राजनीतिक संस्कृति, अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति तथा भागीदार राजनीतिक संस्कृति। आमण्ड के अनुसार एंगलो-अमेरिकी व्यवस्था, महाद्विपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था तथा पूर्व आद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था।

कुल मिलाकर यह कह जा सकता हैंकि राजनीतिक संस्कृति की एक अवधारणा एक उपकरण हैंजिसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सकता है।

14.18 शब्दावली

1. इलीट्स (अभिजात वर्ग): यह वर्ग जो शिक्षित है, धनी हैंऔर सजग है।

2.पैटर्न (पद्धति) :किसी घटना का एक ऐसा सिलसिला जो उसके एक निश्चित चरित्र का निर्माण करता है।

एटीटयूड (अभिवृतियॉ) किसी या घटना के प्रति रूझान या सोच।

3. हेटरोजीनस (विजातीयता) किसी समाज या राज्य में विभिन्न भाषाई, संस्कृतिक और सामाजिक समूह।

4. होमोजीनस (सजातीयता) किसी समाज का आधार एक ही भाषाई, संस्कृतिक औरसामाजिक समूह होना।

5. माइगरेशन (प्रवसन) किसी नगर या देश से लोंगों दूसरे नगरों या देशों में जाना।

6. इमीग्रेशन (उत्प्राव) बाहर के लोंगों का रोजगार की तलाश में आना।

14.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. B, 2. C, 3.C, 4.A

14.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 दूबे: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

2. एस0एम0सईद0 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

3. जाक़िर हुसैन : राजनीतिक सिद्धान्त

14.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

14.22 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत मे राजनीतिक संस्कृति के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये |